UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182342
UNIVERSAL
LIBRARY

मेरी पसन्द

मेरी पसन्द

गुरुदत्त

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसस्टैण्ड,) हैदराबाद ७.

भारती साहित्य सदन-नई दिल्ली

प्रकाशक :
भारती साहित्य सदन,
३०/६० कर्नॉट सरकस, नई दिल्ली–१

Checked 1963

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण
जून १६५८
मूल्य २॥)

Checked 1969

मुद्रक :
श्री मनोहर लाल मनचन्दा
एमको प्रिन्टर्ज़, फरीदाबाद टाऊनशिप।

पात्र

प्रभाकर मिश्र	कवि तथा लेखक
चंचल	प्रभाकर मिश्र की माँ
सुशील	प्रभाकर मिश्र का मित्र
नन्दलाल	प्रभाकर मिश्र का मित्र
विश्वम्भर भट्ट	मथुरा के एक कवि
चन्द्रिका	विश्वम्भर भट्ट की पत्नी
सुमति	विश्वम्भर भट्ट की लड़की
करुणा	अमृतसर के एक कन्या महाविद्यालय की मुख्याध्यापिका
सुदर्शन	करुणा का भाई
देवकी	करुणा की एक सखि
राधाकृष्ण	देवकी का पिता
कमलापति	देवकी के मौसा
मोहिनी	कमलापति की पत्नी
सुभद्रा	कमलापति की बहिन, चंचल के गाँव में उसकी पड़ोसिन
कीर्ति—सुग्गी	सुभद्रा की लड़की

एवं कई अन्य

वन्दे

सकल गुण निधान, वन्दे सकल गुण निधान,
जन जन के मन में व्यापक तव महिमा गावत सुजान।
सकल गुण निधान ॥

जग नाटक के सूत्रधार, रस रंग रूप भाव प्रधान,
मुद्राओं में तव निवास, लय स्वर है तेरा बखान।
सकल गुण निधान ॥

सब तेरे गुणगान करें, भाषा भाव उसमें भरें,
सकल मनोरथ के स्वामी, तुम जग में सबसे महान।
सकल गुण निधान ॥

कर कारज सब नाट्यकार, तव चरणन में दें संवार,
अब तो लो हमको उभार, माँगें तुमसे यही दान।
सकल गुण निधान ॥

अंक एक

दृश्य प्रथम

(नई दिल्ली रेल्वे स्टेशन। प्लैटफॉर्म नम्बर एक पर दिल्ली बॉम्बे जनता ऐक्सप्रेस खड़ी है। यात्री चढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। गाड़ी में भीड़ है। गाड़ी चलने को तैयार है। इंजिन सीटी बजाता है। इस समय एक युवक भागता हुआ प्लैटफॉर्म पर आता है और सामने वाले डिब्बे में चढ़ने का यत्न करता है। डिब्बे के द्वार पर एक यात्री खड़ा हुआ उसको घुसने से रोकता है। डिब्बे में कुछ अन्य यात्री भी हैं।)

द्वार पर खड़ा यात्री—जगह नहीं है। जगह नहीं है।

नवागन्तुक—अरे भाई, गाड़ी छूट रही है। आने दो।

यात्री—पर इस डिब्बे में जगह नहीं है। बैठोगे कहाँ? पीछे सारी गाड़ी खाली पड़ी है।

गाड़ी में बैठा एक वृद्ध—आजाने दो भाई! आजाने दो। गाड़ी चलने वाली है।

(इस समय गाड़ी चल पड़ती है। नवागन्तुक बल-पूर्वक डिब्बे का द्वार खोलकर भीतर घुस आता है। भीतर आकर तथा डिब्बे में पर्याप्त स्थान देखकर कहता है।)

नवागन्तुक—यहाँ जगह तो बहुत है। व्यर्थ में झगड़ा कर रहे हो।

(द्वार पर खड़ा यात्री खांस कर झेंप मिटाने का यत्न करता है। वृद्ध यात्री अपने समीप स्थान दिखा कर नवागन्तुक से कहता है।)

वृद्ध यात्री—आओ भाई, इधर बैठ जाओ।

(द्वार पर खड़ा यात्री भी अपने स्थान पर बैठ जाता है और

नवागन्तुक से कहता है।)

यात्री—बैठिये साहब ! गाड़ी तो चल ही पड़ी है।

(नवागन्तुक वृद्ध के समीप बैठ जाता है। वृद्ध के दूसरी ओर उसकी लड़की तथा पत्नी बैठी हैं। लड़की यात्री के इस प्रकार कहने पर मुस्करा कर कहती है।)

लड़की—गाड़ी चली और इनकी द्वार पर की ड्यूटी भी समाप्त हुई।

नवागन्तुक—बहुत कष्ट दिया है मैंने आपको।

वृद्ध—कष्ट तो कुछ नहीं हुआ। किसी को भी नहीं हुआ।

नवागन्तुक—तो ये मुझको आने क्यों नहीं देते थे ?

वृद्ध—यह नियम है। अगले स्टेशन पर तुम भी ऐसा ही करोगे।

नवागन्तुक—तो मैं भी पागल हो जाऊँगा क्या ?

द्वार वाला यात्री—तो मैं पागल हूँ क्या ? देखो जी ! यदि आने वालों को 'जगह नहीं है, जगह नहीं है' कह लौटाता नहीं, तो यहाँ भी अन्य डिब्बों की भाँति भीड़ हो जाती और आपको खड़े होने को भी स्थान नहीं मिलता।

नवागन्तुक—तो बहुतों को लौटा भी चुके हैं आप ?

यात्री—बीसियों को। जबरदस्ती तो एक आप आये हैं और दूसरे ये वृद्ध महाशय, अपने परिवार सहित।

वृद्ध—पर जगह रहते आप मना कर रहे थे न ? हमारे पास भी तो टिकट था।

यात्री—टिकट लेने मात्र से गाड़ी में नहीं बैठा जा सकता, साहब !

वृद्ध की लड़की—हाँ, टिकट के साथ बल प्रयोग भी करना पड़ता है।

वृद्ध—हमने जबरदस्ती की और आपने भी की। हम भीतर आसके, नहीं तो हम भी दूसरे किसी डिब्बे में धक्के खाते होते।

यात्री—इस लड़की और लड़की की माँ के कारण आप आ पाये हैं।

नहीं तो आप क्या जबरदस्ती करते !

लड़की—छोड़िये जी, यदि मैं धकेलती नहीं तो आप मार्ग कभी न देते। भला ये महाशय कैसे आगये हैं ?

नवागन्तुक—तो जबरदस्त के लिये स्थान है ?

यात्री—यह तो सर्वत्र होता है। आप राजनीति नहीं जानते। एक देश में बाहर वालों को घुसने नहीं दिया जा सकता। आप जबरदस्ती तो ऐसे ही आगये हैं, जैसे भारत में मुसलमान घुस आये थे। जब घुस आये तो यहाँ के नागरिक हो गये और अब देशवासियों का कर्तव्य हो गया है कि उनकी रक्षा भी करें। हाँ, यदि उस समय उनको रोका जा सकता तो वे मुसलमान और उनकी सन्तान अभी भी देश से बाहर होती और यहाँ की सरकार की चिन्ता का कारण न बनी होती।

नवागन्तुक—तो श्रीमान राजनीति तथा इतिहास भी जानते हैं ?

एक अन्य यात्री—केवल जानते ही नहीं, प्रत्युत इस डिब्बे के राजाधिराज बनकर इस डिब्बे के नागरिकों की सुख-सुविधा के लिये चिन्ता भी कर रहे हैं। अब अगले स्टेशन पर फिर इनकी ड्यूटी द्वार पर हो जायेगी, जिससे कोई नया आक्रमण न हो सके।

(सब खिलखिला कर हँसते हैं।)

नवागन्तुक—क्या मैं अपने देश के राजाधिराज का नाम जान सकता हूँ ?

यात्री (खड़े होकर)—राजेश्वर पाँडे।

एक अन्य यात्री (खड़े होकर)—तो बोलो; जनता ऐक्सप्रेस के एक डिब्बे के अधिपति राजेश्वर पाँडे जी की, जय हो।

नवागन्तुक (हँसते हुए)—जय हो। राजेश्वर जी की जय हो।

राजेश्वर (खड़ा होकर और हँसते हुये)—प्रजागण ! मैं राजाधिराज बनना पसन्द नहीं करता। हाँ, यदि आप मुझको अपना प्रधान

मंत्री निर्वाचित करें तो मैं आपकी सेवा कर सकूँगा।

नवागन्तुक—तब तो महाराज मन मानी नहीं कर सकेंगे और मैं अपना वोट आने वालों का द्वार बंद करने वाले को नहीं दूँगा।

राजेश्वर (सभी यात्रियों को संबोधन कर)—भाईयो! मैं देश को सुरक्षित रखने की नीति को मानता हूँ। मैं इसको देश और जाति के लिये हितकर समझता हूँ। मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप अपने हित के लिये और अपने पीछे इस देश में आकर बसने वालों के हित के लिए मेरी ही नीति का समर्थन करें·····

(इस समय गाड़ी की गति धीमी पड़ जाती है। इस पर राजेश्वर अपनी वक्तृता बंद कर विस्मय में अन्य यात्रियों की ओर देखते हुए पूछता है।)

राजेश्वर—यह क्या? अभी स्टेशन तो आया नहीं।

नवागन्तुक—संसार में कोई आर्थिक संकट आ गया प्रतीत होता है।

वृद्ध की लड़की—किसी ने चेन खींची मालूम होती है।

नवागन्तुक—अभिप्राय यह कि किसी पड़ोसी देश में विद्रोह हो गया है।

राजेश्वर—खतरा तो हमको भी हो सकता है। आज तो सब देशों क भाग्य एक दूसरे से जुड़ा हुआ है।

नवागन्तुक—तो संकट निवारणार्थ यू० एन० ओ० में प्रस्ताव भेज देना चाहिए।

(सब हँसते हैं गाड़ी खड़ी हो जाती है। एक टिकट चैकर डिब्बे के भीतर प्रवेश करता है। राजेश्वर अपने स्थान पर बैठ जाता है। गाड़ी पुनः चल पड़ती है।)

टिकट चैकर—अपना अपना टिकट दिखाइए।

(यात्री टिकट निकाल-निकाल कर दिखाते हैं। टिकट चैकर राजेश्वर के पास जाकर टिकट माँगता है। राजेश्वर अपनी जेब में हाथ रडालकर कहता है।)

राजेश्वर—टिकट तो नहीं है।

(यात्री हँस पड़ते हैं।)

वृद्ध यात्री—तो महाराजाधिराज बिना टिकट के यात्रा कर रहे हैं?

(राजेश्वर जेब में से पाँच रुपए का नोट निकालता है और टिकट चैकर अपनी जेब में से भाड़ा देखने की किताब निकाल कर देखता हुआ पूछता है।)

टिकट चैकर—कहाँ जाना है आपको?

राजेश्वर—मथुरा।

नवागन्तुक (विस्मय में)—मथुरा? क्यों साहब! गाड़ी कहाँ जा रही है?

टिकट चैकर—आपको कहाँ जाना है?

नवागन्तुक—अमृतसर।

(सब यात्री हँसते हैं।)

राजेश्वर—मैंने कहा था न कि जगह नहीं है।

नवागन्तुक—तुम्हारे झगड़े में ही तो मैंने देखा नहीं कि गाड़ी किधर जा रही है।

(यात्री पुनः हँसते हैं। टिकट चैकर राजेश्वर से किराया वसूल कर उसको रसीद दे देता है और नवागन्तुक से पूछता है।)

टिकट चैकर—अब आप कहाँ जाइएगा?

नवागन्तुक—मैं स्वयं नहीं जानता कि कहाँ जाऊँ। मुझे जाना तो अमृतसर था।

टिकट चैकर—देखिए, यह गाड़ी फरीदाबाद, कोसी, मथुरा ठहरती है। कहीं उतर जाइएगा और फिर अगली गाड़ी से वापिस आ जाइएगा। वापिस गाड़ी आपको सवेरे मिलेगी।

नवागन्तुक—तो एक टिकट मथुरा का बना दीजिए। कम-से-कम ठहरने को तो स्थान मिल जाएगा।

(सब यात्री हँसते हैं। टिकट चैकर टिकट बनाकर रुपए वसूल करता है।)

लड़की (अपने पिता से)—हमारे महाराजाधिराज बिना टिकट के थे।

राजेश्वर—देखो बहिन ! यह तो जग की रीति है; टिकट से कोई राजा अथवा प्रधान मंत्री नहीं बनता। इसके लिए शौर्यता चाहिए।

वृद्ध—हाँ बेटी ! राजेश्वर बाबू ठीक कहते हैं। संसार में यही कुछ हो रहा है।

आते हैं बहुत यहाँ टिकट कटाये बिना,
मन में विचार कर, बच ही तो जाएँगे।
गाड़ी बहुत लम्बी है बाबू होगा एक ही,
किस किस से पूछेगा, नहीं घबराएँगे॥
पीछे आने वालों को तो कहेंगे जगह नहीं,
गाड़ी पर अधिकार अपना जमाएँगे।
खड़े हो फाटक पर कहें हम सेवक हैं,
और टिकट वाले भी आने नहीं पाएँगे॥

(सब दत्त-चित्त हो कर कविता सुनते हैं।)

वृद्ध—और भी सुनिए—

जग की है रीति यही आए जो पहिले यहाँ,
जमा अधिकार बैठे मालिक कहाएँगे।
पॉकेट में दाम नहीं समझ से काम नहीं,
योग्यता का नाम नहीं नेता बन जाएँगे॥
भगवान तो एक है ठग हैं बहुत यहाँ,
किस किस को पूछेगा क्यों पकड़े जाएँगे।
छोटी है जीवन लीला मज़े यहाँ बहुत हैं,
सोचते हैं कैसे हम इनको उड़ाएँगे॥

नवागन्तुक—बाबा ! आप तो कवि मालूम होते हैं।

वृद्ध—कुछ तुकबंदी करता हूँ।

नवागन्तुक—मैं भी सुनाऊँ कुछ ?

सब यात्री—अवश्य, अवश्य ।

नवागन्तुक—

बहुत हैं जाने वाले मंज़िल जो भूले हुए,
उत्तर से दक्षिण भी नहीं पहिचानते ।
जीवन उद्देश्य को जो समझते हैं नहीं,
उपदेश लम्बे चौड़े वही बखानते ॥
किस ओर से आए हैं किस ओर को जाना है,
गाड़ी में चढ़ गये बिना कुछ जानते !
चली गाड़ी देखकर प्रसन्न थे वे हो रहे,
मिथ्या मार्ग चल पड़े पर नहीं मानते ॥
झगड़ कर बैठे थे समझे अधिकार है,
मज़ाक उड़ाते हुए सबको बनाएँगे ।
टिकट बाबू आया तो उसने समझाया जो
समझ नहीं सके कि कहाँ अब जाएँगे ॥
मतलब से चले थे बे मतलब हो गये
किस्मत के धक्के अब बेबस हो खाएँगे ।
सागर की लहरों में छोटी सी तरणी पर
बैठे हुए सोचते हैं किधर को जाएंगे ॥

एक यात्री—मुकर्रिर ! मुकर्रिर !!

वृद्ध—आप तो कविता करते हैं ।

नवागन्तुक—जी, आपकी तरह ।

वृद्ध—हमारी बात छोड़िए । कहाँ रहते हैं आप और किस मतलब से चले थे, जो बेमतलब हो गये ?

नवागन्तुक—हँसेंगे नहीं तो बताऊँ ।

वृद्ध—हँसी की बात होगी तो जरूर हँसेंगे । 'फ्रीडम ऑफ थौट' और

'फ्रीडम ऑफ स्पीच' तो हमारे संविधान में लिखी है।

नवागन्तुक—ओह ! तो आप भी स्वतंत्रतावादी हैं ?

वृद्ध—हाँ और कुछ जन्म सिद्ध अधिकार मानने वाला हूँ। उनमें हँसना एक है।

नवागन्तुक—दूसरों को मूर्ख बनाकर ?

वृद्ध—मूर्ख तो लोग अपने आप बनते हैं। अब आप ही बताईए, गलत गाड़ी में आप हमारे कहने से बैठे थे क्या ?

नवागन्तुक—तो बाबा ! हँसो। मैं हूँ लेखक। समाचार पत्रों में लेख लिखता हूँ। मेरे एक मित्र ने मेरी सगाई का प्रबन्ध किया था और लड़की देखने जा रहा था। अमृतसर जाना था और मथुरा चल पड़ा हूँ।

वृद्ध—यह तो कोई हँसी की बात नहीं हुई। यह तो अति खेद का विषय है।

नवागन्तुक—हँसी की बात यह है कि मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा।

लड़की—क्यों ? उस बेचारी का क्या बनेगा ?

नवागन्तुक—जिसके चिन्तन मात्र से गलत गाड़ी में चढ़ बैठा हूँ, उससे विवाह कर कहाँ पहुँचूँगा, विचारते हुए डर लगता है।

वृद्ध—तो अब क्या करेंगे ?

नवागन्तुक—रात मथुरा रह कर कल प्रातःकाल दिल्ली लौट जाऊँगा।

वृद्ध—और अमृतसर·····?

नवागन्तुक—अब वहाँ नहीं जाऊँगा। अपने मित्र से क्षमा माँग लूँगा। मेरी गाड़ी का कांटा बदल गया है।

लड़की—तो अब सगाई नहीं होगी ?

नवागन्तुक—जब ठीक गाड़ी पर सवार होऊँगा, तो हो जाएगी।

दृश्य द्वितीय

(मथुरा नगर । एक बड़ा सा मकान है। उसके डाईनिंग हाल में मेज़ के चारों ओर कुर्सियां लगी हैं। कुर्सियों पर वृद्ध कवि, उसकी धर्म पत्नी, उसकी लड़की और यात्री लेखक, बैठे हुए हैं। लड़की चाय बना रही है।)

वृद्ध—क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?

लेखक—मैंने समझा था कि आप पहिचान गए हैं, जो निमंत्रण देकर घर ले आए हैं।

वृद्ध—निमंत्रण तो मानवता के नाते दिया था। परिचय एक पृथक बात है।

(लड़की चाय बनाकर एक प्याला लेखक के सामने रखते हुये कहती है।)

लड़की—चाय पीकर बताइयेगा। कहीं गलत गाड़ी में चढ़ने की भांति, मुख से नाम गलत न निकल जाए।

लेखक—जी नहीं; गलत गाड़ी चाय न पीने से नहीं, प्रत्युत चाय पीने से चढ़ा था। अमृतसर के लिये, चलने से पूर्व एक मित्र के यहाँ गया था। उसने चाय पिलाई, फल खिलाए, और फिर लड़की के रूप तथा गुण की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। इसी से देरी हो गई। वह अपनी मोटर में लेकर स्टेशन को चला, तो मार्ग में पैट्रोल समाप्त हो गया। पैट्रोल भरवाया। स्टेशन पहुँचा तो इंजिन ने सीटी बजा दी। मैंने समझा कि गाड़ी छूट रही है। अतः बिना टिकट लिए ही गाड़ी में बैठ गया और गाड़ी चल पड़ी।

(लेखक चाय की सरूकी लगाकर पुनः कहता है।)

लेखक—मेरा नाम है प्रभाकर मिश्र; व्यवसाय है जर्नलिज्म। ईश्वर की

कृपा है और काम चलता है।

वृद्ध—और मैं हूँ विश्वम्भर भट्ट। जद्दी पेशा है कविता करना। आजकल कविता के बाजार में मंदी है। राजा रईस रहे नहीं। जन साधारण को रोटी कमाने से फुर्सत नहीं। किसी को भी कविता सुनने का समय नहीं, समझने की योग्यता नहीं। विश्वम्भर भट्ट अब अपनी धर्मपत्नी पर कविता करते हैं और उसी को सुनाते हैं। (इतना कह विश्वम्भर भट्ट अपनी पत्नी की ओर मुस्करा कर देखता है।)

प्रभाकर—पर ये क्या पुरस्कार देती होंगी?

भट्ट जी—पुरस्कार तो खूब देती हैं। इनकी अनुकम्पा से ही तो जीता हूँ। श्रीमती जी का नाम है चन्द्रिका देवी। मेरे पूर्ण जीवन में चाँदनी बन छिटकती रहती हैं। और यह है हमारी इकलौती बेटी। नाम है सुमति। संगीत विशारदा है। गाती है। हम कल दिल्ली रेडियो स्टेशन पर गए थे। इसकी परीक्षा हुई है और इसका स्वर स्वीकार कर लिया गया है। अगले मास ये गाएंगी।

प्रभाकर—तब तो मज़ा रहेगा। बाप भजन लिखेंगे, लड़की गाएगी। दोनों की ख्याति फैलेगी। एक पत्थर से दो शिकार होंगे।

सुमति—जी हाँ। गाड़ी चल पड़ी है।

चन्द्रिका—मुझको भय है कि तुम गलत गाड़ी पर चढ़ बैठी हो। कहीं ख्याति के स्थान बदनामी न हो जाए।

प्रभाकर—क्यों माँ जी! यह क्यों?

चन्द्रिका—रेडियो में गाने वालों को मैं सुना करती हूँ। इसी से कहती हूँ।

सुमति—माँ! गलत गाड़ी प्रतीत हुई तो प्रभाकर जी की भाँति लौट आऊंगी।

भट्टजी—इस पर भी सचेत रहेंगे, जिससे इतनी दूर न निकल जाएं

कि लौटना ही कठिन हो जाए।

चन्द्रिका—और किसी बड़े जंक्शन पर पहुँच गए, जहाँ से बहुत सी गाड़ियाँ चलती हों, तब तो और भी अधिक कठिनाई उपस्थित हो जाएगी।

सुमति—दिल्ली से बड़ा जंक्शन और कौन सा होगा? वहाँ से तो लौट आए हैं।

चन्द्रिका—जीवन में तो इससे भी बड़े जंक्शन आ सकते हैं। एक क्षण की भूल हुई तो कहीं से कहीं पहुँच जाओगी।

सुमति (प्रभाकर से)—अब आप अपनी मंगेतर को देखने कब जाइएगा?

प्रभाकर—मंगनी तो अभी हुई नहीं थी और अब होगी भी नहीं। मेरी जीवन गाड़ी का कांटा बदल गया है।

सुमति—तो यह बेचारी क्या करेगी?

प्रभाकर—उसके घर वाले कोई अन्य साथी ढूँढ लेंगे।

भट्ट—हाँ, ठीक तो है—

तीन काल में कुछ नहीं मिलता बिना भाग्यके इस जग में
पुरुषार्थ को भी तो चाहिए भाग्य का संबल पग पग में॥

सुमति—पर बाबा!

भाग्य है लंगड़ा चल नहीं सकता बिन पुरुषार्थ किंचित भी
कभी न मिलती राम को सीता भले ही रहता चिंतित भी॥

भट्टजी—नहीं सुमति! यह तो इस प्रकार कहना चाहिए—

विश्व विजयी रावण को देखो मूर्ख क्यों वह बन बैठा।
सकल सम्पदा रखने पर भी वह सिय हरण परठन बैठा॥
भाग्य का चक्कर ले आया था शूर्पनखा को उसके पास।
चल पड़ी थी भाग्य की गाड़ी विभीषण जब हुआ उदास॥

प्रभाकर—तो परिवार भर कविता करता है ?

चन्द्रिका—जी नहीं। मैं तो सुनती ही हूँ।

भट्टजी—ये कविता रूपी दीपक में तेल डाला करती हैं।

प्रभाकर—यह कैसे ?

भट्टजी—जब आपका विवाह होगा और आप की पत्नी प्रेमभरी दृष्टि से आपकी ओर निहारेगी तो आप अपनी कविता में नवीन रस का संचार पाएंगे। यह काव्य रूपी दीपक में तेल होगा।

प्रभाकर—ओह समझा। पर मैंने तो विवाह का विचार छोड़ दिया है।

भट्टजी—तो भाई मेरे ! आपकी कविता बिना तेल के बुझती जाएगी।

प्रभाकर—आपका कहना है कि अपने में काव्य रस को जीवित रखने के लिए विवाह करना आवश्यक है।

भट्टजी—हाँ।

प्रभाकर—पर यह अमृतसर वाली ने तो मस्तिष्क खराब कर दिया था। वह क्या कविता में तेल डालेगी ?

भट्टजी—तो कोई और ढूँढलो।

प्रभाकर—आपकी सम्मति ठीक प्रतीत होती है। विचार करूँगा।

सुमति—कहीं अधिक विचार करने लगे तो पागल हो जाइयेगा।

चन्द्रिका—कवि और होते ही क्या हैं ? इनका संसार इस पृथ्वी पर तो होता नहीं। इनकी ही बात सुनलो। इनके भाई के लड़के का विवाह था। मैं तो एक दिन पहले ही चली गई थी। बाप बेटी बरात पर जाने के लिये तैयार हुये कि बेटी ने एक पद किसी कविता का कह दिया। बस लगे उसके पिता भी कविता करने। सायंकाल के बैठे-बैठे प्रभात हो गई और जब तक कविता समाप्त नहीं हुई, बाप बेटी बैठे-बैठे छन्द बनाते रहे।

इनके भाई और भावज क्रोध में उबल रहे थे। मैं घर पर इनके न आने का कारण जानने आई तो दोनों छन्द पर छन्द

बना रहे थे। जब मैंने डाँटा तो इनके होश ठिकाने आये और भागे अपनी भावज से क्षमा माँगने।

प्रभाकर—तो भाभी ने क्षमा किया अथवा नहीं ?

चन्द्रिका—भगवान जाने। तब से मेरे साथ तो बोलती ही नहीं।

भट्टजी—जब हमने कविता सुनाई तो प्रसन्न हो गई थीं। मैंने सुनाया था—

मानव जीवन रेल की गाड़ी।
किस्मत की पटरी पर चलती॥
इंजिन है केवल पुरुषार्थ।
काँटे से है दिशा बदलती॥

प्रभाकर—भट्टजी ! आप अपने विवाह के समय भी कविता बनाते थे क्या ?

भट्टजी—बनाई तो थी। मैं मन ही मन विचार कर रहा था—

क्या घूंघट में है चाँद छुपा।
शरद पूर्णिमा का सुन्दर सा॥
जिसकी शीतल सुखद चन्द्रिका।
हिय को करदे कला केन्द्र सा॥

फिर विचार करता था—

कब देखूंगा मुख मोहन को।
नैन कटार छुपी घूंघट में॥
अधरों से निकली वाणी को।
मैं कैसे लूँगा हिय पट में॥

चन्द्रिका—बस रहने दीजिये। विवाह हुआ तो बिना दर्शन दिए ही लौट गए और पाँच वर्ष तक गौना लेने ही नहीं आए। जब तक पिता जी ने दो सहस्र नकद देने का वचन नहीं दिया, तब तक इनके

हिय पट न खुले।

प्रभाकर—भट्टजी ! यह तेल तो कड़ुवा है।

भट्टजी—पर इसका प्रकाश बहुत तीव्र है।

(चारों हँसते हैं। प्रभाकर दो घूंट चाय पीकर प्याला सासर में रखता है। पश्चात् एकाएक पूछता है।)

प्रभाकर—भट्टजी ! आपने कभी अतुकान्त कविता भी की है ?

भट्टजी—नहीं।

प्रभाकर—सुनाऊँ एक ?

भट्टजी—अवश्य।

प्रभाकर—तो सुनिये। एक मित्र की लिखी हुई है।

उस पार तुम खड़ी हो,
इस पर हूँ मैं।
धानी के खेतों में चाँद उतर आया
सीप की बूंदों से भिगोना चाहता हूँ
मगर तुम नहीं भीगतीं
तुम्हें बाँहों के गजरे में पिरोना चाहता हूँ
मगर मेरे हाथ तुम तक जाते ही नहीं
हमारे बीच खड़ी है, यह काँच की पारदर्शी दीवार
तुम मुझे दीखती हो और मैं तुम्हें देखता हूं
तुम्हारी आँखें स्थिर हैं, मेरे हाथ पथरा गये हैं
मेरे हाथों में केवल तुम निखरी हो
तुम्हारी आँखों में केवल मैं बिखरा हूं॥

(सुमति खिलखिला कर हँसती है। अन्य सब विस्मय में उसका मुख देखने लगते हैं।)

चन्द्रिका—सुमति ! हँस क्यों रही हो ? तुम शिष्टता भी भूलती जाती हो।

सुमति—माँ ! ये तो कवि के भाव हैं, जो किसी बालक के हाथ से भूमि

पर गिर कर बिखर गये हैं।

भट्टजी—पर भाव तो सुन्दर हैं।

सुमति—इनको माला में पिरोने के लिये किसी चतुर कलाकार की आवश्यकता है।

प्रभाकर—तो वह कलाकार सुमति देवी बन जाएँ न।

भट्टजी—हाँ बिटिया! इन भावों को एक सुन्दर माला में पिरो डालो। देखें, तुम कितनी बड़ी कलाकार हो।

(सुमति गम्भीर हो जाती है और आँखें मूँद कर विचार करने लगती है। कुछ काल तक विचार कर वह धीरे धीरे गाकर कहने लगती है।)

सुमति—

चली धान बटोरने गोरी सिर ओढ़े चूनरी केसरी।
मदमाती चलती हिरणी सी लगती थी सुन्दर भाव भरी॥
इस पार खड़े मैंने देखा उस पार उगी वह ऊषा सी।
उसने भी देखा जब मुझको रह गई खड़ी वह पूषा सी॥
नयनों के मोतियों की माला अब मैंने यह पिरो डाली।
पहनानें हार चलीं बाँहें थी दूर पहुँच से वह आली॥
यह अन्तर की थी भीत खड़ी ऊँची सी दोनों के भीतर।
जब परस्पर हमने देखा था चितवन सम्मोहन अन्य मधुर॥
टिकटिकी बंधी थी आँखों में जब से अटकीं आ मुझ पर थीं।
बाँहें मेरी तो ऊपर ही रह गयीं उठायीं पत्थर थीं॥
आँखों में मेरे वह निखरी सिन्दूरी ऊषा की रानी।
हाथों पर मेरे आ चमकी बन लाल परी वह मन मानी॥

(प्रभाकर ताली बजाकर प्रशंसा के भाव में कहता है।)

प्रभाकर—सुन्दर! सुन्दर!! परन्तु सुमति देवी! आपने तो धान के खेतों में चाँद को केसरी चूनरी ओढ़े ऊषा बना दिया है।

सुमति—इतना अधिकार तो माला पिरोने वाले को होता ही है कि वह

डोरे का रंग स्वयं निश्चित करे।

(प्रभाकर मुस्कराता हुआ सुमति की ओर देखता रह जाता है।)

दृश्य तृतीय

(अमृतसर में एक कोठी। सेठ सुदर्शन कोठी की लॉन में एक कुर्सी पर बैठा है। सामने तिपाई रखी है। तिपाई के दूसरी ओर एक युवती बैठी समाचार पत्र पढ़ने का बहाना कर रही है। वह बेचैनी से थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् समाचार पत्र के पीछे से कोठी के फाटक की ओर देखती है और फिर कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखती है। सुदर्शन एक पुस्तक पढ रहा है। एकाएक वह घड़ी में समय देखता है और कहता है।)

सुदर्शन—अब तो नौ बज गये हैं। करुणा! जरा टेलिफोन कर पता करो कि फ्रन्टियर मेल आई है अथवा नहीं।

(करुणा समाचार पत्र एक ओर रखकर उठ खड़ी होती है और बरामदे में चली जाती है। वहाँ एक कोने में रखे टेलिफोन पर नम्बर मिलाती है।)

करुणा—हैलो! कौन देवकी? स्टेशन से लौट आई हो?·····वे आगये हैं?·····नहीं·····गाड़ी आई है तो वे क्यों नहीं आये·····बहुत लोग थे वहाँ·····तुम यहाँ नहीं आ रहीं क्या?·····आ रही हो न?·····भाई साहब चिन्तित हैं····· तो आजाओ, जल्दी आना।"

(करुणा टेलिफोन बन्द कर वापस लॉन में आकर कुर्सी पर बैठती हुई कहती है।)

करुणा—देवकी इत्यादि स्टेशन पर गये थे। देवकी कहती है कि आपके मित्र नहीं आए। सब लोग वहाँ से निराश हो लौटे हैं।

(सुदर्शन कुछ परेशान सा दिखाई देता है। कुछ सोच कहता है।)

सुदर्शन—कुछ खास बात हो गई होगी। उसको अवश्य आना चाहिये था। यदि नहीं आ सका तो तार भेज देनी चाहिये थी। मैंने उसको लिखा था और वह यहाँ तुमको देखने के लिये आना चाहता था।

करुणा—देवकी यहाँ आ रही है। मैंने उसको हिन्दी सभा वालों की निराशा का वर्णन करने के लिये बुलाया है।

सुदर्शन—इससे क्या होगा? मैं उसको चिट्ठी लिखता हूँ। दो दिन में उत्तर आ जायेगा।

(इस समय एक लड़की कोठी में प्रवेश करती है।)

करुणा—लो देवकी आगई।

(करुणा उठकर देवकी का स्वागत करती है। देवकी समीप आकर एक कुर्सी पर बैठ जाती है।)

देवकी—मैं तो स्वयं ही इधर आ रही थी। प्रभाकर जी ने आकर आप के यहाँ ही तो ठहरना था। मैं आकर बताना चाहती थी कि वे नहीं आये।

सुदर्शन—कितने लोग थे स्टेशन पर?

देवकी—बहुत भीड़ थी। हिन्दी सभा वाले तो सब थे। उनके अतिरिक्त समाचार पत्र के प्रतिनिधि भी थे। जब गाड़ी प्लैटफॉर्म पर पहुँची तो फर्स्ट क्लास के डिब्बों की ओर सब लपके। परन्तु वे कहीं दिखाई तक नहीं दिये।

सुदर्शन—कोई पहिचानता भी था उन्हें?

देवकी—एक दो थे, जो कहते थे कि उनसे दिल्ली में मिल चुके हैं।

सुदर्शन—बहुत विचित्र बात है। उसका पत्र आया था कि वह आ रहा है।

देवकी—पत्र कहाँ है? जरा पढ़िए तो आज ही आने को लिखा है न?

(सुदर्शन अपनी जेब में से पत्र निकाल कर देवकी को दे देता है। देवकी पत्र हाथ में लेकर जोर-जोर से पढ़ती है।)

देवकी—

प्रिय सेठ साहब ! बहुत ही चतुर हैं आप। हिन्दी सभा के नाम से मैं कदापि न आता। आज जलसे-जलूस, पुष्प मालाओं और व्याख्यानों की बीमारी सी चल पड़ी है। मैं इनको बिल्कुल पसन्द नहीं करता। एक लेखक को इस प्रकार की नुमायिश से सर्वथा दूर रहना चाहिए। जनता को भी इस प्रकार की व्यर्थ की बातों में समय तथा धन व्यर्थ न गंवाकर लेखक की कृतियों का प्रचार करना चाहिए। अतः जलसे में सम्मिलित होने के लिये मैं कदापि न आता, परन्तु·····

मैं अब अट्ठाईस वर्ष पूरे कर चुका हूँ और मैं समझता हूँ कि मुझको आपका प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए। आपके इस कार्य के लिए निमंत्रण को मैं अस्वीकार नहीं कर सकता। सो मैं आ रहा हूँ। अन्तिम निर्णय वहाँ पहुँच कर करूँगा।

मैं रविवार प्रातः फ्रन्टियरमेल से पहुँच रहा हूँ। उसी सांय-काल लौट आना चाहता हूँ।

कृपाभिलाषी—प्रभाकर

(देवकी पत्र पढ़ कर स्तब्ध रह जाती है।)

सुदर्शन (देवकी के मुख पर देखते हुए)—मैं समझता हूँ कि कुछ बहुत बड़ा विघ्न आ उपस्थित हुआ होगा, जो वह नहीं आया।

(करुणा अपनी कुर्सी से उठकर अपने कमरे की ओर चली जाती है। देवकी भी उसके पीछे जाती है। करुणा देवकी को देख कहती है।)

करुणा—भगवान जाने क्या हो गया है ? मेरा दिल तो धक धक कर रहा है।

देवकी—ओह ! कुछ अपशकुन दिखाई देने लगे हैं ?

करुणा—अपशकुन तो नहीं कह सकती। फिर भी भगवान जाने क्या घटना घट गई है।

देवकी—मैं तो दिल्ली जाकर उनसे मिलना चाहती हूँ।

करुणा—कुछ आवश्यक कार्य है क्या ?

देवकी—नहीं, आवश्यक तो नहीं। पर तुम्हारा दिल जो धक धक करने लगा है। यह कुछ अच्छे लक्षण नहीं हैं।

करुणा—तुम उनको जानती हो क्या ?

देवकी—हाँ, उनके लेखों द्वारा। वैसे कभी दर्शन नहीं हुए।

करुणा—किसके साथ जा रही हो ?

देवकी—यहाँ से तो अकेली जाऊँगी। वहाँ मेरे मौसा रहते हैं। उनकी कोठी में ही ठहरूँगी। प्रभाकर जी का पता मालूम है, जाकर मिल लूँगी।

करुणा—कब जा रही हो ?

देवकी—शनिवार फ्रन्टियर मेल से जाऊँगी और रविवार फ्लाइंग मेल से आ जाऊँगी।

करुणा—मैं भी चलूँ तुम्हारे साथ ?

देवकी—क्या करोगी जाकर ?

करुणा—जो तुम करोगी।

देवकी—मैं तो उनसे उनकी एक पुस्तक के विषय में पूछना चाहती हूँ।

करुणा—और मैं तो केवल उनके दर्शन करना चाहती हूँ।

देवकी—यह पत्र में उन्होंने क्या लिखा है ? भाई साहब का कौन सा प्रस्ताव स्वीकार करते हैं वे ?

करुणा—यह तो भैया ही जाने। मुझको पता नहीं।

देवकी—अच्छी बात है। अब मैं चलती हूँ। प्रभाकर जी आ जाते तो बहुत मज़ा रहता।

(देवकी उठ पड़ती है और करुणा उसको बाहर बरामदे तक छोड़ने

जाती है। करुणा जब वापिस कमरे में आती है तो सुदशन भी उसके पीछे पीछे आ जाता है। दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं। पश्चात् सुदर्शन अपनी जेब में से एक पत्र निकाल, दिखाकर कहता है।)

सुदर्शन—देखो करुणा ! मैं यह पत्र प्रभाकर को लिख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि इसका उत्तर दो दिन में आ जाना चाहिए और फिर एक दिन तुम स्वयं जा कर मिल आना। वह तुमको मिलना चाहता है और तुम्हारे विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। मैंने लिखा है—

प्रिय प्रभाकर, तुम्हारा पत्र मिला, परन्तु तुम नहीं आए। इससे यहाँ सबको भारी चिन्ता लग रही है। अवश्य कोई विशेष कारण हो गया होगा। लिखना कि क्यों नहीं आए ? यहाँ हिन्दी सभा वाले एक भारी संख्या में तुम्हारे स्वागत के लिए स्टेशन पर गए थे और बहुत ही निराश होकर लौटे हैं।

मैं चाहता हूँ कि करुणा तुमको दिल्ली मिल ले। वहाँ वह किसी कार्य विशेष से जा रही है। तुम भी उसको देख लोगे, मिल लोगे और बातचीत भी कर लोगे। वह भी तुमसे मिलना चाहती है। पत्रोत्तर वापसी डाक से देना।

करुणा—भैया ! मेरा जाना उचित समझते हैं आप ?

सुदर्शन—कमसे कम हानि कुछ नहीं होगी।

करुणा—अच्छी बात है। अगले शनिवार जाऊंगी।

सुदर्शन—तब तक तो उसका उत्तर आजाएगा।

दृश्य चतुर्थ

(दिल्ली में जैन मन्दिर। रहने के मकानों में एक मकान का कमरा। कमरे में प्रभाकर एक मेज़ के सामने एक कुर्सी पर बैठा हुआ पत्र

लिख रहा है। पत्र लिखकर ऊँचे-ऊँचे पढ़ता है।)

प्रभाकर—

प्रिय सेठ साहब ! आपका पत्र मिला। मैं काय में इतना व्यस्त था कि पत्रोत्तर नहीं दे सका। यह तो लेखकों की पुरानी बीमारी है। वे इतना कुछ लिखते हैं कि उनके पास अपने पत्र लिखने का न तो समय रह जाता है, न ही रुचि। अतः लेखक बेचारा क्षमा का पात्र है।

मैं उस दिन गाड़ी पर सवार होने स्टेशन कुछ देरी से पहुँचा। फ्रन्टियर मेल निकल चुकी थी और उसके स्थान प्लैट-फॉर्म पर बॉम्बे एक्सप्रेस खड़ी थी। बिना विचार किए कि कौन गाड़ी है, भाग कर चढ़ गया। चढ़ने पर एक मूर्ख से झगड़ा भी होने लग गया। उस झगड़े में गाड़ी चल पड़ी और मुझ को ज्ञान ही नहीं हुआ कि मैं उत्तर के स्थान दक्षिण की ओर चल पड़ा हूँ। अतः मथुरा जाकर गाड़ी से उतर और अगले दिन दिल्ली लौट सका।

आपका पत्र मंगलवार को मिल गया था, परन्तु यह निश्चय नहीं कर सका कि पत्र लिखूँ अथवा अमृतसर स्वय आकर क्षमा माँगूँ।

एक सप्ताह तक वहाँ पहुँचूँगा। करुणा देवी को मेरे लिए आने का कष्ट नहीं करना चाहिए। कुछ और काम हो तो बात दूसरी है। लिखें, आ रही हैं तो कब तक आयेंगी ?

मेरी अवस्था तो इस प्रकार है —

प्रिय दर्शन को चल पड़ी बिना जेब में दाम
भटक गई मैं राह में मालिक मेरे राम ॥

(पत्र पढ़कर प्रभाकर सन्तोष अनुभव करता है और लिफाफे में

डालकर बंद कर देता है। मेज़ पर एक अन्य लिख कर रखा पत्र उठाकर पढ़ने लग जाता है।)

प्रभाकर—

माननीय कवयित्री सुमति देवी जी, नमस्कार। आपका कृपा पत्र मिला। यह जान कर भारी सन्तोष हुआ कि आपके मन में मेरे लिए संवेदना उत्पन्न हुई है। इस के लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।

आपके पत्र को पढ़ कर तो मैं मन में बड़े-बड़े दुर्ग बनाने लग गया हूँ। यह तो भविष्य ही बताएगा कि वे दुर्ग कैसे बनते हैं। मैं भट्ट जी के कथन से सर्वथा सहमत हूँ कि —

तीन काल में कुछ नहीं मिलता बिना भाग्य के इस जग में।
पुरुषार्थ को भी तो चाहिए भाग्य का संबल पग पग में॥

मैं स्वप्न लेने लगा हूँ कि मेरी गाड़ी तो मिथ्या मार्ग पर चल पड़ी थी, इस पर भी भाग्य उसको एक स्टेशन पर ले गया था, जहाँ मेरे पुरुषार्थ को सहारा मिलने लगा है।

यह जान कर कि आपके रेडियो के कार्यक्रम की तिथि निश्चित हो गई है, बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं उस तिथि की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। सोचता हूँ कि आप गाएंगी, मैं सुनूँगा, कितना मधुर समय होगा!

आपका भेजा चित्र मेरी मेज़ पर अपना उचित स्थान पा गया है। अब मैं अपने कार्य में उससे स्फूर्ति पाता हूँ। जब कभी अरुचि अथवा थकावट से काम से ऊब जाता हूँ, तो आपके चित्र में आपकी आँखें मुझको ताड़ना करती प्रतीत होती है। वे कहती प्रतीत होती हैं —

भाग्य है लंगड़ा चल नहीं सकता बिन पुरुषार्थ किंचित भी।

पश्चात मैं पुनः कार्य में तल्लीन हो जाता हूँ।

दर्शनाभिलाषी—प्रभाकर

(पत्र पढ़कर सन्तोष अनुभव कर, उसे लिफाफे में बंद कर देता है। पश्चात अंगड़ाई लेता हुआ कहता है।)

प्रभाकर—

आँखों में मेरे वह निखरी सिन्दूरी ऊषा की रानी।
हाथों में मेरे आ चमकी वन लाल परी वह मन मानी॥

वाह रे लेखक! किसने तुम्हारी जीवन गाड़ी का कांटा बदला है!

(प्रभाकर दोनों पत्र लेकर कुर्सी से उठता है और उन्हें डाक में डालने के लिए जाने को दरवाज़े की ओर बढ़ता है। इसी समय एक अन्य युवक दरवाज़े से भीतर आता है।)

प्रभाकर (उस युवक को देख कर)—ओह, नन्द महोदय! आओ भाई! आओ। बीवी ने छुट्टी दे दी है आने की?

नन्द—छुट्टी तो नहीं दी। उसने टमाटर खरीदने भेजा है। पर छोड़ो इस बात को। कहाँ जा रहे हो?

प्रभाकर—मैं पत्र डालने जा रहा हूँ। तुम बैठो मैं अभी आता हूँ।

नन्द—अच्छा देखो मित्र! जरा दो आने के टमाटर भी लेते आना। मेरा चक्कर बच जाएगा।

प्रभाकर—तो भाभी से कहोगे कि टमाटर मैं लेकर आया हूँ?

नन्द—नहीं दादा! इससे तो जूते पड़ेंगे।

प्रभाकर (हंसते हुए)—अच्छा, मैं अभी लेकर आता हूँ।

(प्रभाकर कमरे से बाहर निकल जाता है और नन्दलाल उसकी कुर्सी पर बैठ मेज़ पर रखी एक पुस्तक उठाकर पढ़ने लगता है। कुछ ही देर पश्चात बाहर घंटी बजती है।)

नन्दलाल (सतर्क हो)—कौन है? आजाओ।

(दरवाज़ा खुलता है और करुणा तथा देवकी भीतर प्रवेश करती हैं। देवकी के हाथ में एक छोटा सा पोर्टमेंट्यु है। करुणा खाली हाथ है। नन्दलाल आश्चर्यचकित, प्रश्न भरी दृष्टि में उनकी ओर देखता है। लड़कियाँ भी ध्यान पुर्वक उसको देखती हुई खड़ी रह जाती हैं।)

नन्दलाल—किससे मिलना चाहती हैं आप ?

करुणा—लेखक प्रभाकर मिश्र से।

नन्दलाल (घड़ी में समय देखते हुए)—वे काम से गए हुए हैं।

(करुणा और देवकी एक दूसरे का मुख देखती हैं, पश्चात् नन्दलाल की ओर देखती हैं।)

नन्दलाल—उनसे क्या काम है आपको ? बताइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

करुणा— आप उनके क्या लगते हैं ?

नन्दलाल—मित्र, केवल मित्र।

(दोनों लड़कियाँ मुसकराती हैं।)

देवकी—केवल से आपका क्या अभिप्राय है ?

नन्दलाल—कुछ नहीं·····केवल·····मेरा अभिप्राय यह है····· छोड़िए इस बात को। क्या मैं जान सकता हूँ कि आपको क्या काम है उनसे ?

देवकी—हमने उनसे मिलना ही था।

नन्दलाल—तो बैठिए आप। अभी आजाएंगे। चाय पीएंगी आप ?

देवकी—चाय तैयार है आपके यहाँ ?

नन्दलाल—जहाँ से खाना आता है, वहाँ से चाय भी आजाएगी।

देवकी—आपको कष्ट होगा।

नन्दलाल—अजी, कष्ट नहीं। आप बैठिए। अभी एक मिनट में आजाएगी।

करुणा—कुछ विशेष आवश्यकता तो है नहीं। हाँ, यदि मेहमानदारी

का शौक हो तो उसे पूरा कर सकते हैं।

(नन्दलाल कमरे से बाहर निकल जाता है। करुणा कमरे को देखने लगती है। देवकी मेज़ पर रखे सुमति के चित्र को उठाकर ध्यान से देखती है।)

करुणा—भैया कह रहे थे कि वे अकेले रहते हैं।

देवकी—मैं समझती हूँ कि वे स्वयं ही हैं। परन्तु उन्होंने अपने को छुपाया क्यों, मैं कह नहीं सकती।

करुणा—हमको भी तब तक अपना परिचय नहीं देना चाहिए, जब तक वे स्वयं न मान जाएं।

देवकी—तो बात कैसे करोगी उनसे ?

करुणा—प्रभाकर जी के विषय में ही पूछूंगी।

देवकी—और यदि ये ही प्रभाकर जी हुए तो ?

करुणा—देखें, कब तक छुपाते हैं।

देवकी—इस पर भी सावधानी से बात करनी चाहिए। कहीं अपनी ही हंसी न उड़वा बैठें।

(पश्चात् देवकी अपने हाथ में पकड़े चित्र की ओर ध्यान से देखकर गंभीर हो कहती है।)

देवकी—यह चित्र उनकी बहिन का प्रतीत होता है। नीचे नाम लिखा है —सुमति।

(करुणा भी चित्र देखने लगती है।)

करुणा—लड़की तो सुन्दर है।

देवकी—यह छन्द भी लिखा है —

नयनों की बूँदों से माला अब मैंने एक पिरो डाली।
पहनाने हार चलीं बाँहें थी दूर पहुँच से वह आली॥

करुणा—नहीं, बहिन नहीं हो सकती। यह छंद तो प्रेमिका ही बताता है।

(नन्दलाल खाँसता हुआ भीतर आता है। उसके पीछे-पीछे एक होटल का नौकर हाथ में चाय की ट्रे लिए हुए प्रवेश करता है।)

करुणा—आपने व्यर्थ में कष्ट किया।

नन्दलाल—चाय पीते-पीते बातचीत ठीक होगी न।

देवकी (चित्र की ओर संकेत कर)—यह चित्र किसका है ?

नन्दलाल—क्यों ?

करुणा—हमने समझा कि आपकी बहिन है।

नन्दलाल—बहिन नहीं। यह मथुरा वाले विश्वम्भर भट्ट जी की लड़की का चित्र है।

करुणा—बहुत सुन्दर है।

नन्दलाल—हाँ, इसमें दो कथन नहीं हो सकते।

देवकी—नीचे लिखी कविता तो और भी सुन्दर है।

(करुणा चाय बनाने लगती है। होटल का नौकर चला जाता है।)

नन्दलाल—यह कविता इस लड़की की अपनी लिखी है।

करुणा—तो यह कवयित्री है।

नन्दलाल—यह उनका खानदानी पेशा है।

देवकी—तो भट्टजी भी कविता करते हैं ?

नन्दलाल—एक विख्यात कवि हैं।

करुणा—आप भी कवि दिखाई देते हैं।

नन्दलाल—क्या देखा है आपने कवि जैसा मुझमें ?

करुणा—आप रहस्यवादी कवि हैं।

नन्दलाल—नहीं देवी जी ! मैं तो यथार्थवादी हूँ। इसी लिए इन बातों को छोड़ आपका काम जानने की इच्छा रखता हूँ।

(करुणा चाय बनाकर एक-एक प्याला सबके सम्मुख रखती है। वह और देवकी चाय पीने लगती हैं। नन्दलाल अपना प्याला नहीं

उठाता ।)

देवकी—ओह ! यह तो हम कवयित्री जी के सम्मोहन में भूल ही गए थे । आप के मित्र कब तक आएंगे ?

नन्दलाल—आजाना चाहिए था । मालूम नहीं कहाँ अटक गए हैं ?

करुणा—मतलब यह कि उन से भेंट कठिन है ।

नन्दलाल—इस समय आपको जल्दी है तो सायंकाल आठ बजे पधारिए । वे अवश्य मिल जाएंगे । वह भोजन का समय होगा और आप भी भोजन यहाँ करिएगा ।

देवकी—हमको तो मध्यान्ह की गाड़ी से चले जाना है ।

नन्दलाल—तो आप दिल्ली के बाहर से आई हैं ?

देवकी—जी ।

नन्दलाल—कब गाड़ी जाएगी आपकी ?

देवकी—एक बजे मध्यान्ह पश्चात् । हमें यहाँ एक और भी काम है ।

(देवकी चाय का खाली प्याला ट्रे में रख देती है ।)

नन्दलाल—यदि कुछ काम मेरे योग्य हो तो बता दीजिए ।

देवकी—साहित्य चर्चा के लिए आई थीं । वह तो अब हो नहीं सकती । हां, उनसे कह दीजिएगा —

यह दुनियाँ है अति विकट स्थान पग धरना हे सावधान हो ।
तारों में तो उलझ न जाना रह जाओगे परेशान हो ॥
अगणित घूमत हैं गगना में किस किस से नेह लगाओगे ।
भूतल पर हे चलने वाले कहाँ पंख जो उड़ पाओगे ॥

नन्दलाल—यदि आपत्ति न हो तो लिख लूँ । इस प्रकार स्मरण रखना तो कठिन है ।

देवकी—हाँ-हाँ, लिख लीजिए ।

(नन्दलाल लिखता है ।)

देवकी—और भी लिखिये ?

दूरी से अति सुन्दर लगते सब टिमटिम झिम झिम हैं करते।
घृणा क्रोध की अन्तस्तल में ज्वाला महान हैं वे भरते॥
यदि समीप जा फटके इनके झुलस अंगारा हो जाओगे।
इनकी संगत से तो केवल अपमान महा ही पाओगे॥

नन्दलाल—बहुत सुन्दर! इस पत्रिका के नीचे नाम क्या लिखूँ?

देवकी—लिख लीजिए, करुणा अमृतसर।

(नन्दलाल 'ओह' कह कर आवाक् देवकी का मुख देखता रह जाता है। करुणा की हंसी निकल पड़ती है।)

करुणा (हंसकर)—कुछ और भी लिख लीजिए।

नन्दलाल—हाँ, लिखाइए।

करुणा—

छुप सकते नहीं लाल कभी भी।
चाहे कितनी बात बनावें॥
उगते सूरज को बादल भी।
रखें ढाँप पर मिटा न पावें॥

नन्दलाल—और इसके नीचे नाम किसका लिखूँ?

(करुणा देवकी की ओर अर्थ भरी दृष्टि से देखने लगती है। पश्चात् कहती है।)

करुणा—लिख लीजिए, देवकी।

नन्दलाल—धन्यवाद। पर जब आपने इतना संदेश दिया है, तो उस छुपने वाले की ओर से भी तो सुनते जाइए।

(करुणा और देवकी खिलखिलाकर हंस पड़ती हैं।)

देवकी—हां कहिए।

नन्दलाल—

छुपे हुए वह वीर बहादुर।
पकड़े गए तो बोल उठे॥

तीस मारखाँ हम ही तो हैं।
मन हमसे ही थे डोल उठे॥

देवकी—तो पकड़े गए? अच्छा बताइए, उस दिन आप आए क्यों नहीं?

करुणा—इनसे पूछने का तो कुछ भी अर्थ नहीं। कुछ काल्पनिक कहानी बना देंगे। ये तो सत्य तब ही बोलते हैं, जब पकड़े जाते हैं।

नन्दलाल—जी, अब कहानी नहीं कहूँगा। इतना तो जान गया हूँ कि आप अति चतुर हैं। जब पकड़े जाकर ही स्वीकार करना है, तो पहिले ही बता देता हूँ।

देवकी—हां तो बताइए। क्या बात थी, जो आप आ नहीं सके? हिन्दी सभा के लोग प्लैटफॉर्म पर पुष्प मालाएं लिए आपकी प्रतीक्षा करते रहे थे।

नन्दलाल—मुझे दुःख है कि वे पुष्प मालाएं अपने जीवन को सार्थक नहीं कर सकीं। बात यूँ हुई कि —

पथिक चला था चन्द्रलोक को चढ़ मन चंचल की गाड़ी में।
पथ भटक गया, पहुँचा था जा, थी ऊषा जहाँ सवारी में॥
वह स्वर्ण जटित वाहन में थी, थी केसरी चूनरी ओढ़ खड़ी।
सिन्दूरी आभा उसकी थी वह झिल मिल करती हंस पड़ी॥
फिर चमकी पूरे यौवन में थी रात गई दिन चढ़ आया।
वह पथिक तेज से उसके था व्याकुल हो अति घबराया॥
जा बैठा पीपल के नीचे अति शीतल थी उसकी छाया।
तब लगा सोचने वह मन में है किसने उसको भरमाया॥
समझ सका था कुछ कुछ ही जब पंख रात ने फैलाए।
उदय हुई थी मधुर चन्द्रिका चन्द्रदेवता चढ़ आए॥
अब शीतल मृदुल चान्दनी था वह तप्त हृदय को भूल गया।
चन्द्र लोक की फिर यात्रा को मन उसका है अनुकूल भया॥

(देवकी और करुणा के माथे पर त्यौरी चढ़ जाती है।)

देवकी—कवि ! मत जाना वहां। कहीं उस लोक की शीतलता में जम कर बर्फ ही न हो जाओ।

करुणा—अथवा मार्ग में ही न भटक जाओ और फिर नरक रूपी ज्वाला में जल भुन कर स्वाहः हो जाओगे।

(नन्दलाल इस क्रोध प्रदर्शन से घबड़ा उठता है। उसको अन्यमनस्क भाव में चुप देख देवकी गंभीर हो कहती है।)

देवकी—चिन्ता न करिए। कवियों से कवियों की भाषा में ही बात की जाती है।

करुणा—मैं समझती हूँ कि अब हमको चलना चाहिए।

नन्दलाल—जहाँ आपने इतना कष्ट किया है, वहाँ थोड़ी देर और ठहर जाइए। भोजन का समय हो रहा है। भोजन करके ही जाइएगा।

करुणा—जी नहीं; कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। हमको अभी एक अन्य स्थान पर भी जाना है। मुश्किल से गाड़ी पकड़ पाएंगी।

नन्दलाल—कहीं गाड़ी छुट गई और आप स्टेशन पर न पहुँच सकीं, तो लौट आइएगा। लेखक घर पर ही मिलेगा।

करुणा—हम गाड़ी से छुट नहीं सकतीं और न ही मार्ग से भटक सकेंगी।

(देवकी और करुणा, दोनों जाने के लिए कुर्सियों से उठ द्वार की ओर बढ़ती हैं। नन्दलाल कुछ विचार कर आवाज़ देता है।)

नन्दलाल—तनिक ठहरिए। यह कवि की एक तुच्छ भेंट लेते जाइए।

(इतना कह वह प्रभाकर की नवीन कृति की दो प्रतियां उठाकर, उन पर लिखता है। एक पर लिखता है—सादर समर्पण, श्रीमती

करुणा देवी की सेवा में—प्रभाकर मिश्र। यह लिख वह उस पुस्तक को देवकी के हाथ में दे देता है। दूसरी पर यह लिखता है—सादर समर्पण, श्रीमती देवकी जी की सेवा में—प्रभाकर मिश्र। यह पुस्तक वह करुणा के हाथ में दे देता है। इस भेंट से करुणा और देवकी विस्मय में एक दूसरे का मुख देखने लगती हैं। कुछ विचार कर देवकी अपने पोर्टमैन्टू से एक चित्र निकाल कर नन्दलाल की ओर बढ़ाती है और कहती है।)

देवकी—आपकी भेंट के प्रतिकार में हमको भी तो कुछ देना चाहिए। आशा है आप इसे पसन्द करेंगे।

नन्दलाल—धन्यवाद।

(चित्र हाथ में ले नन्दलाल हाथ जोड़ नमस्कार करता है। लड़कियां उत्तर में नमस्कार कर विदा हो जाती हैं। नन्दलाल कुछ काल तक ध्यान से चित्र को देखता रहता है। पश्चात् खिलखिला कर हंसता है और चित्र की ओर देखते हुए कहता है।)

नन्दलाल—खूब छकाया है। जीवन भर याद रखेंगी।

(इस समय प्रभाकर कमरे में प्रवेश करता है और नन्दलाल को खुलकर हंसते देख आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछता है।)

प्रभाकर—नन्दु भैया! क्या हुआ है? किसको छकाया है? कौन जीवन भर याद रखेगा?

नन्दलाल—कहां रहे हो दादा, इतने समय तक? तुम्हारे पीछे तो पूरे तीन ऐक्ट का एक नाटक खेला जा चुका है।

प्रभाकर—डाकखाने के बाहर बरामदे में पुस्तक वाले की दुकान पर यह पुस्तक देखी तो पढ़ने लगा था। बहुत ही रोचक पुस्तक है। इसको पढ़ते पढ़ते भूल ही गया था कि तुम्हारे लिए टमाटर लाने हैं। पर तुम तो हंस रहे थे? क्या बात है?

नन्दलाल—प्रभाकर भैया! बहुत मजा रहा। वे आई थीं।

प्रभाकर (सतर्क हो कर)—कौन आई थीं ?

नन्दलाल—अरे, वही अमृतसर वाली। गज़ब की सुन्दर है। यह देखो चित्र दे गई है।

(प्रभाकर नन्दलाल के हाथ से चित्र लेकर देखता है और फिर कहता है।)

प्रभाकर—इसमें तो दो लड़कियाँ हैं। नीचे नाम भी नहीं लिखा।

नन्दलाल— हाँ, जल्दी में लिखना भूल गई है। यह देखो, (देवकी के चित्र पर उंगली रखकर) यह करुणा है और (करुणा के चित्र पर उंगली रख) यह उसकी सहेली देवकी है।

प्रभाकर—कैसे कहते हो ? मुझको तो कुछ गड़बड़ मालूम होती है।

नन्दलाल—मुझको तुम मूर्ख समझते हो। इसने (देवकी के चित्र पर उंगली रखकर) यह कविता कही थी और देखो करुणा नाम लिखाया है। और दूसरी ने यह कविता कही थी और नाम लिखाया है देवकी।

प्रभाकर—दोनों में कौन अधिक सुन्दर है ?

(नन्दलाल पुनः चित्र पर ध्यान से देखता है और विचार करता है। फिर देवकी के चित्र पर उंगली रख कर कहता है।)

नन्दलाल—मेरे विचार में यह, करुणा देवी।

प्रभाकर (ध्यान से चित्र देखते हुए)—मेरे विचार में यह देवकी अधिक सुन्दर है।

नन्दलाल—तुम भी लाल बुझक्कर हो।

दृश्य पंचम्

(एक मकान के द्वार पर एक स्त्री खड़ी है। वह किसी की प्रतीक्षा कर रही प्रतीत होती है। इस समय नन्दलाल हाथ में एक

लिफाफे में टमाटर लिए आता है। वह द्वार में प्रवेश करना चाहता है, परन्तु वह स्त्री द्वार में खड़ी हो मार्ग रोक लेती है और कहती है।)

स्त्री—कहाँ रहे हैं इतनी देर तक?

नन्दलाल—देर कहाँ हुई है प्रिय! अभी तो गया था और तुरन्त लौट आया हूँ।

स्त्री—देखिए घड़ी में। पूरे तीन घंटे हो गए हैं। दो आने के टमाटर लेने गए थे और जिन्दगी समाप्त हो गई है।

नन्दलाल—राम राम! क्या कहती हो रानी! किसका जीवन समाप्त हो गया है? अभी तो मैं जीवित हूँ। तुम भी तो .....।

स्त्री—बस-बस रहने दीजिए। मुझको तो लाकर अफीम पिला दो। न रहूँगी और न कोई आपको पूछेगा।

नन्दलाल—पर अफीम पी नहीं जाती रानी जी! यह खाई जाती है। और फिर मैं कहीं दूर तो गया नहीं था और अभी आ गया हूँ। जो कुछ समय लगा है, वह सब्ज़ी वाले के कारण लगा है। उसने टमाटर गंदे दिये थे। अब देखो न कितने बढ़िया लाया हूँ।

(नन्दलाल लिफाफे में से एक टमाटर निकाल कर दिखाता है।)

नन्दलाल—देखो तो। क्रोध करने पर रानी जी का मुख ऐसे ही लाल हो जाता है।

(नन्दलाल की पत्नी टमाटर छीनकर उसके मुख पर दे मारती है। टमाटर नन्दलाल के मुख पर लग कर फूट जाता है और उसकी छींटें कपड़ों इत्यादि पर पड़ जाती हैं। नन्दलाल अपनी ऐसी दुर्दशा देखकर कहता है।)

नन्दलाल—ओह हो! देखो क्या कर दिया है? एक पैसे का टमाटर खराब किया और चार आने की कपड़ों की धुलाई बिगाड़ी। अब मुख धोने में और समय बरबाद होगा। मुझे वैसे ही देर

हो रही है।

स्त्री—तो फिर कहीं जाना है ?

नन्दलाल—हां···हां···श्रीमती जी।

स्त्री—उसी सिर सड़े कवि के घर में ?

नन्दलाल—नहीं-नहीं, मेरी रानी ! मेरा आज का प्रोग्राम सुन लोगी तो फड़क उठोगी। अब आने दो न भीतर। सड़क पर चलते हुए लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ? कहेंगे कि नन्दलाल की बीवी किस मां बाप की बेटी है, जो भंगी चमारों की भांति सड़क पर खड़ी हो लड़ रही है।

स्त्री—तो मैं भंगी चमार हूँ ?

(क्रोध में स्त्री नन्दलाल पर झपटती है। वह कुछ पीछे हट जाता है। उसकी पत्नी द्वार छोड़ आगे बढ़ती है। मौका पा नन्दलाल लपक कर अन्दर भाग जाता है। विवश उसकी पत्नी भी अन्दर चली जाती है। इस समय पड़ोस के दो चार लोग यह नाटक देख परस्पर बातचीत करते आ खड़े होते हैं।

एक पड़ोसी—बहुत ही तेज़ मिज़ाज है, नन्दलाल की बहू।

दूसरा—यही तो ज़िन्दगी का मज़ा है। विशेष बात यह है कि ये लड़ते हैं घर से बाहर सड़क पर खड़े हो कर और घर में घुस कर मीठी मीठी बातें करने लगते हैं।

(सब लोग हँसते हैं।)

पहला पड़ोसी—तो भैया ! क्या तुम अपनी बीवी से सड़क पर प्रेम करते हो और लड़ते हो रज़ाई में घुस कर ?

(पुनः सब हँसते हैं।)

पहला पड़ोसी—मैं तो कितनी ही देर से देख रहा था कि नन्दलाल की बहू दरवाजे पर खड़ी है। मैं समझ गया था कि आज महाभारत होने वाला है। सो खूब हुआ।

तीसरा पड़ोसी—पर यह नन्दलाल जाता कहाँ है ? हर रोज़ उसकी बीवी यही कहती रहती है कि कहाँ रहे हो इतनी देर तक ?

पहिला—वही मिश्रा है न, जो तुक बंदी किया करता है। उसी के घर में घुसा रहता है।

दूसरा—पर वह तो अविवाहित है। विवाह हुए का अविवाहित से कैसा मेल ?

पहिला—दोनों बचपन के मित्र हैं। मैं तो वर्षों से इनको इकट्ठे देख रहा हूँ। यह तो भाग्य की बात है कि एक का विवाह हो गया और दूसरे का नहीं हुआ।

दूसरा—तभी नन्दलाल की बीवी अफीम खाने को कहती है। वह कदाचित चाहती है कि पुनः दोनों अविवाहित हो जाएँ।

पहिला—वह मन से थोड़े ही मरना चाहती है। नन्दलाल को डरा-धमका कर उसके मित्र से पृथक करना चाहती है। ऐसा होना भी तो चाहिए। वह मित्र काम काज तो कुछ करता नहीं। दिन भर घर बैठा रहता है और बढ़िया कपड़े पहिन कर मटरगश्त किया करता है।

दूसरा—तो खाता पीता कहाँ से है ? घर का रईस है क्या ?

पहिला—कोई नहीं जानता कि वह कहाँ का रहने वाला है ! रहता शान से है। वह होटल वाला कह रहा था कि सवा सौ-डेढ़ सौ तो उसका खाने-पीने का बिल ही हो जाता है।

(इस समय नन्दलाल के मकान का द्वार पुनः खुलता है और नन्दलाल अपनी पत्नी का हाथ अपनी बांह में लिए हुए बाहर निकलता है। पड़ोसी एक ओर हटकर उनको मार्ग दे देते हैं और विस्मय में उन का मुख देखने लगते हैं। जब वे दोनों चले जाते हैं तो उनमें वार्तालाप पुनः चालू हो जाती है।)

एक—अब तो सुलह हो गई प्रतीत होती है।

दूसरा—हाँ, देखो न। पत्नी ने दो सौ रुपए की तो साड़ी पहिन रखी है। ऐसा लगता है मानो भाई की बारात में जा रही हो।

एक अन्य—मैं जानता हूँ वे किधर जा रहे हैं।

पहिला—किधर ?

तीसरा—रिवोली सिनेमा में, बारह बजे का शो देखने।

दृश्य षष्ठम्

(मथुरा नगर। विश्वम्भर भट्ट जी का मकान। ड्राइंग रूम में भट्ट जी, चन्द्रिका और सुमति बैठे विचार-विनिमय कर रहे हैं। सुमति के हाथ में प्रभाकर का पत्र है।)

भट्टजी—तुम्हारा भेजा हुआ चित्र उसकी मेज़ पर उचित स्थान पा गया है और वह उससे अपने कार्य में स्फूर्ति पाने लगा है। ऐसी अवस्था में मैं समझता हूँ कि वह तुमसे विवाह की इच्छा करने लगा है।

(सुमति चुपचाप बैठी रहती है और भट्ट जी के कथन का उत्तर नहीं देती।)

चन्द्रिका—वह इच्छा करने लगा है तो करे। क्या चित्र मेज़ पर रख लेने मात्र से विवाह की इच्छा मान लेनी चाहिए ?

भट्टजी—यह तो उस बीमारी का आरम्भ प्रतीत होता है, जिसका अन्त विवाह में अथवा आत्महत्या में हुआ करता है।

चन्द्रिका—इन दोनों में से कोई बात नहीं होगी। मैं उसको सुमति के योग्य नहीं समझती। इससे विवाह नहीं होगा। वह आत्म-हत्या भी नहीं करेगा। वह तीस वर्ष से बड़ी आयु का है। आत्म-हत्या तो अल्प-वयस्क और कदाचित अशिक्षित लोग ही करते हैं।

भट्टजी—इसी कारण तो मैं कहता हूँ कि इस विषय पर हमारा निर्णय

हो जाना चाहिए। वह तो अभी से स्वप्न लेने लगा है कि उसकी जीवन गाड़ी भाग्य से एक ऐसे स्टेशन पर आ गई है, जहां, वह आशा करता है कि उसका पुरुषार्थ गाड़ी को ध्येय पर ले जाएगा।

चन्द्रिका—उसको आशा करने दीजिए और पुरुषार्थ भी कर लेने दीजिए। मैं समझती हूँ कि सुमति उस अनिश्चित मन व्यक्ति को अपना पति नहीं बना सकती।

सुमति—मां! तुम व्यर्थ में ही चिन्ता करने लगी हो। मेरा तो मन कहता है कि इस पत्र को विवाह का प्रस्ताव कह नहीं सकते। कवियों के कथन और कर्म में बड़ा भारी अन्तर बना रहता है।

भट्टजी—यह ठीक है कि यह प्रस्ताव नही है, परन्तु यह प्रस्ताव की भूमिका तो हो ही सकती है। इस कारण हमको अपने मन में उचित उत्तर देने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं जानना चाहता हूँ कि सुमति इसमें क्या कहती है?

सुमति—मैं तो समय आने पर विचार कर सकती हूँ। अभी कुछ नहीं कह सकती।

चन्द्रिका—मेरे विचार में यह सम्बन्ध स्वीकार करने योग्य नहीं है।

भट्टजी—इतना कुछ तो सुमति नहीं कह रही।

चन्द्रिका—वह क्या कहेगी? उसको इस बात की समझ ही क्या है?

सुमति—वाह मां! अब तो तुमने मुझे बेसमझ ही बना डाला।

भट्टजी—ये व्यर्थ की बातें हैं चन्द्रिका! मैं तो कहता हूँ कि जैसा सुमति चाहे, हमको वैसा करना चाहिए। मैं जानना चाहता हूँ कि कहीं वह मुझसे इस विषय पर बात करे, तो मैं क्या कहूँ उससे?

सुमति—जो मन में आए कह दीजिएगा।

भट्टजी—तो जो मैं कहूँगा, मान जाओगी?

सुमति—मानना ही पड़ेगा। नहीं तो क्या करूँगी?

भट्टजी—तुम जिससे चाहो विवाह कर सकती हो। तुम सज्ञान हो और

अपना भला बुरा समझती हो।

चन्द्रिका—खाक समझती है। कपड़े पहिनने तक की होश नहीं।

भट्टजी—यह तो वह सिखा देगा।

सुमति—देखिए पिता जी ! हम दिल्ली तो जा ही रहे हैं। कवि जी से मिलेंगे भी। वहाँ देखेंगे कि वह कैसे और क्या कहते हैं। साथ ही अन्य सब जानने योग्य बातें जान लेंगे। वहाँ से लौट कर माँ से विचार कर ही तो निर्णय करेंगे।

चन्द्रिका—जो देखने और जानने योग्य था, वह मैंने जान लिया है। वह बालक मात्र है। मार्ग चलता चलता तितलियों के पीछे भागने लगा है।

सुमति—माँ ! तुम तीस वर्ष के युवक को बालक और मुझको तितली समझती हो।

चन्द्रिका—और क्या ? उसके व्यवहार को देख और कहा ही क्या जा सकता है ?

सुमति—बाबा ! मैं तितली नहीं हूँ।

(विश्वम्भर भट्ट हँसता है और कहता है।)

भट्टजी—नाराज़ हो गई बेटी ! तुम जानती हो कि क्या हो ? कम से कम मैं तो नहीं जानता कि मैं क्या हूँ और किधर जा रहा हूँ—

नहीं जानता मेरी मंज़िल किधर है,
कहाँ से चला हूँ किधर मेरा घर है।
किसने बुलाया इशारे से मुझको,
किसने बनाया यह मेरा सफर है।
आया जहाँ में अन्धेरे से चल कर,
चला हूँ जहाँ तारीकी का दर है।
मतलब नहीं कुछ यहाँ आने का तो,
जाने का मखसद ओझल नज़र है।

रही ज़िन्दगी बन बड़ा एक मुइम्मा,
पल पल में होता यह दिल बेसबर है॥

सुमति—नहीं बाबा ! यह इस प्रकार नहीं है। मैं तो कुछ ऐसा समझती हूँ—

नहीं है ज़रूरत मुझे जानने की,
कहाँ से चली हूँ कि जाना कहाँ है।
क्या था रहा ज़िन्दगानी से पहिले,
क्या होने वाला बाद इस जहाँ है।
मन है यह कहता कि जीऊँ जहाँ में
ले लूँ मज़ा जो जहाँ में निहाँ है॥

मैं चाहती हूँ कि—

सुबु उठ के देखूँ पत्तों पे शबनम।
है रात ने आँसू चुप चाप रोए॥
फ़ुरकत की बेताबी में है इसने।
हरियाले रुखसार अपने भिगोए॥
सूरज की किरणों ने चूमा सुबु ही।
जज़बात जागे, रहे जो थे सोए॥
हरकत में आई थी नस नस ज़मीं की।
अरमान पूरे हुए थे जो खोए॥

भट्टजी—समझा हूँ सुमति ! प्रभाकर जी से विवाह असम्भव नहीं।

सुमति—ये अर्थ मेरे कथन से तो नहीं निकलते।

चन्द्रिका—कुछ भी हो। दिल्ली में उसके घर पर नहीं ठहरना चाहिए।

भट्टजी—मिलने में तो कोई हानि नहीं।

दृश्य सप्तम्

(नई दिल्ली में प्रभाकर का कमरा। प्रभाकर, नन्दलाल और विश्वम्भर भट्ट कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। एक ओर तिपाई पर रेडियो सेट रखा हुआ है। रेडियो बोल रहा है।)

रेडियो—हम आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से बोल रहे हैं। अब आप एक गीत सुनेंगे। गीत है मथुरा वाले विश्वम्भर भट्ट जी का और गाने वाली हैं सुमति भट्ट।

(पश्चात गीत आरम्भ होता है।)

निर्मल गगना के तारों में विचरूँ मैं चन्दा सा बन कर,
समधुर शीतल स्वच्छ शीलमय जन जन के मन का मोहन कर॥

कोई ऐसी राह बता दो न,
कोई संगम सरल बना दो न;
नभ की गंगा में तरणी चले
मेरे बंधन सकल छुड़ा दो न।

मैं अन्धकार में अति उज्जवल बन निकलूँ तेजोमय दिनकर,
निर्मल गगना के तारों में विचरूँ मैं चन्दा सा बन कर॥

मेरे रोम रोम में गीत भरे,
मेरे स्वप्नों में तो मीत भरे;
मेरी मीठी लगन लगे जिससे
मेरे सकल स्वरों में प्रीत भरे।

मैं झूम झूम उल्लास भरा, दे दूँ जीवन को कण कण कर,
निर्मल गगना के तारों में विचरूँ मैं चंदा सा बन कर॥

जब हाथ में हाथ दिये अपने,
दो राही चले लेते स्वप्ने;

निर्भीक अनन्त की ओर चले,
ज्यूँ बहती हैं गंगे यमुने ॥
न चुकने वाले पथ पर तो हैं चले जा रहे क्षण क्षण कर,
निर्मल गगना के तारों में विचरूँ मैं चन्दा सा बन कर ॥

(गीत के साथ साथ प्रभाकर सिर हिलाता हुआ ताल देता है। विश्वम्भर भट्ट गम्भीर है और नन्दलाल मुस्कराता रहता है। गीत समाप्त होता है।)

प्रभाकर—बहुत सुन्दर ! बहुत सुन्दर !!

भट्टजी—क्या सुन्दर है ?

प्रभाकर—सुमति·····मेरा मतलब है सुमति का गाना और आपकी कविता भी।

(भट्टजी का मुख खिल उठता है।)

भट्टजी—बिना गाने के कविता फीकी रह जाती है।

नन्दलाल—जी हाँ; इसने तो सोने पर सुहागे का काम किया है।

प्रभाकर—सामने बैठकर गाती होती तो बहुत आनन्द आता। कैसा विशाल भाल है। हिरणी समान मोटी-मोटी आँखें और गोल कपोल हैं। फिर इतनी सुन्दर काया में कितना मधुर और लोचदार स्वर है। इस पर आपकी शिक्षा ने तो कमाल ही कर रखा है। ये कवयित्री हैं, गायिका हैं; सुसंस्कृत और विदूषी हैं। मैं आपको बधाई दिये बिना नहीं रह सकता।

भट्टजी—प्रभाकर जी ! उसके शरीर की निर्माता तो उसकी माँ चन्द्रिका देवी हैं। इस सुन्दर वाद्य यंत्र में प्राण डालने वाले सुमति के गुरू श्री कृष्णराव हैं। हाँ, इन प्राणों को प्रेरणा देना वाला विश्वम्भर भट्ट है।

प्रभाकर—तो यह गाड़ी बनी है चन्द्रिका देवी जी की वर्कशॉप में। इस में बिजली, पानी भरा है गुरू कृष्णराव जी ने और आप इस

गाड़ी के इंजिन हैं।

(भट्टजी और नन्दलाल हँसते हैं।)

भट्टजी—अजी नहीं; यह उपमा तो ठीक नहीं बैठी। मैं इसको इस प्रकार समझता हूँ। गाड़ी और इंजिन बनाया है चन्द्रिका देवी ने। गाड़ी की पटरी बनाई है कृष्णराव जी ने और मैं तो केवल काँटा बदलने वाला हूँ। यह काँटा ही गाड़ी की दिशा निश्चय करता है।

प्रभाकर—तब तो बहुत अच्छा है। कृपया सुमति देवी रूपी गाड़ी का काँटा ऐसा बदलिये कि वह मेरे स्टेशन पर आ पहुँचे।

भट्टजी (गम्भीर होकर)—क्या अभिप्राय है आपका ?

प्रभाकर—अभिप्राय तो स्पष्ट है। मुझको सुमति बहुत भली लग रही है। मैं आपसे उसे विवाह में माँग रहा हूँ।

भट्टजी—तो प्रभाकर जी, इस गाड़ी को खड़ा करने के लिये प्लैटफॉर्म तो बनाइये। सुमति रूपी गाड़ी इस सामग्रीहीन स्टेशन पर आयेगी तो यहाँ ठहरने को स्थान न देख अगले जक्शन के लिये चल देगी।

प्रभाकर—यह बात नहीं भट्टजी ! साधन और सामग्री तो है। अभी गाड़ी कोई आई नहीं। न ही किसी के आने की सूचना है। अतः आवश्यकता न होने से सामान गुदाम में पड़ा है। आप देखना चाहेंगे क्या ?

(प्रभाकर उठकर अपनी मेज का दराज खोलता है। उसमें से बैंक की पास बुक और एक बड़ा सा लिफाफा निकाल भट्टजी के पास ले आता है।)

प्रभाकर—देखिये, गुदाम में कितना सामान रखा है।

(भट्टजी पास बुक देखते हैं और उसमें जमा रकम पढ़ते हैं।)

भट्टजी—पन्द्रह हज़ार चार सौ बावन रुपया ग्यारह आना छः पाई।

प्रभाकर—और यह भी देखिये।

(प्रभाकर लिफाफे में से बॉंड निकाल कर दिखाता है।)

प्रभाकर—विचार था कि स्टेशन की मालिका यहाँ पहुँच सारा सामान स्वयं सजातीं तो ठीक रहता।

भट्टजी—पर गाड़ी आकर खड़ी कहाँ होगी ?

प्रभाकर—अभी एक पुराना स्टेशन है। हापुड़ के पास केसरगंज में। गाड़ी वहाँ खड़ी की जा सकेगी। पश्चात् नया स्टेशन बन जायेगा।

भट्टजी—केसरगंज में क्या है ?

प्रभाकर—वहाँ मेरी माँ रहती हैं। एक छोटा सा, साफ-सुथरा और सुख-सुविधा सम्पन्न घर है।

भट्टजी—परन्तु वहाँ तो एक दूसरी गाड़ी आने वाली थी न ? मुझको भय है कि कहीं दोनों एक साथ आगईं तो आपस में टकरा न जाएँ।

प्रभाकर—वह गाड़ी अब नहीं आएगी। उसको लाइन क्लीयर नहीं दिया गया और वह लौट गई प्रतीत होती है।

भट्टजी—तो पहिले निश्चय कर लीजिए कि वह लौट गई है अथवा नहीं। पश्चात् ही काँटा बदलने पर विचार हो सकता है।

(इस समय सुमति कमरे में प्रवेश करती है।)

सुमति— कहाँ का काँटा बदलने पर विचार हो रहा है पिता जी ?

(सुमति कुर्सी पर बैठ जाती है। नन्दलाल हाथ जोड़ नमस्ते कहता है। सुमति नमस्ते का उत्तर देते हुए प्रश्न भरी दृष्टि में उसकी ओर देखती है। प्रभाकर नन्दलाल का परिचय कराता है।

प्रभाकर—ये हैं मेरे मित्र श्री नन्दलाल। घर के रईस हैं परन्तु घर बीवी के हाथ में दे रखा है।

(सुमति पुनः हाथ जोड़कर नमस्कार करती है।)

सुमति—हाँ तो पिताजी ! किसका काँटा बदला जा रहा था ?

भट्टजी—एक गाड़ी मथुरा स्टेशन पर खड़ी है। प्रभाकर जी का कहना है कि उस गाड़ी को दिल्ली रवाना कर दिया जाए। मैंने कहा था कि दिल्ली में गाड़ी ठहरने को स्थान ही नहीं है। आपने एक

प्लैटफॉर्म बताया है। मेरा विचार था कि उस प्लैटफॉर्म पर एक गाड़ी अमृतसर से आकर खड़ी होने वाली थी। मैंने अपने मन का भय प्रकट किया कि कहीं दो गाड़ियों में टक्कर न हो जाए। इस पर आपने स्पष्टिकरण कर दिया है कि उस अमृतसर वाली गाड़ी को लाइन क्लीयर ही नहीं दिया गया और वह लौट गई है।

सुमति—लाइन क्लीयर क्यों नहीं दिया गया ?

प्रभाकर—वह गाड़ी उस प्लैटफॉर्म पर फिट नहीं बैठ रही थी।

सुमति—तो क्या मथुरा वाली फिट बैठ जायेगी ?

प्रभाकर—हाँ, उसकी देखभाल कर ली गई है।

सुमति—पर क्या अमृतसर वाली गाड़ी की भी देख भाल हुई थी ?

प्रभाकर—हाँ, गाड़ी बिना सूचना दिये आ गई थी, इसी कारण लौटा दी गई है।

सुमति—लौटा दी गई अथवा स्थान अनुपयुक्त देख स्वयं लौट गई है ?

प्रभाकर—गाड़ी के मन की बात तो गाड़ीवान से ही पता चल सकती है। स्टेशन वालों को तो केवल इतना ही पता हो सकता है कि लाइन क्लीयर नहीं दिया गया था।

सुमति—तो इस विषय में गाड़ी वालों से पूछ-ताछ होनी चाहिए।

(प्रभाकर इस पर चुप हो विचार करने लगता है। नन्दलाल प्रभाकर को चुप देख कहता है।)

नन्दलाल—क्या हानि है ? इस समय वह गाड़ी अमृतसर कोर्ट रोड नम्बर पन्द्रह पर खड़ी है।

सुमति—तो मेरा प्रस्ताव है कि जाँच कमेटी के अध्यक्ष पंडित विश्वम्भर भट्टजी हों। वे चाहें तो अपने साथ किसी अन्य को ले जा सकते हैं।

भट्टजी—मैं अपने साथ चन्द्रिका देवी को जाँच समिति में सम्मिलित करना चाहूँगा।

प्रभाकर (साहस पकड़ कर)—हाँ ठीक तो है।

नन्दलाल—यह जाँच कार्य कब आरम्भ होगा ?

सुमति—मैं जाँच समिति की संयोजिका नियुक्त किये जाने की प्रार्थना करती हूँ।

भट्टजी—इस प्रार्थना पर जाँच समिति के अध्यक्ष सहानुभूति पूर्वक विचार करेंगे।

(इस पर सब हँसने लगते हैं। सुमति बात बदल देती है।)

सुमति—पिता जी ! सुना था मेरा गाना ?

भट्टजी—हाँ, सुना था। प्रभाकर जी ! बताइए, कैसा रहा है ?

प्रभाकर—गाने की प्रशंसा करते करते ही तो गाने वाली की प्रशंसा होने लगी थी, जिसके परिणाम स्वरूप यह जाँच समिति नियुक्त हो गई है।

सुमति—अब मेरा अगला कार्यक्रम अगले मास की बीस तारीख को इसी समय होगा।

भट्टजी—तो कॉन्ट्रैक्ट कर आई हो ?

सुमति—हाँ पिता जी ! (कुछ विचार कर) अब हमको चलना चाहिए।

प्रभाकर—भोजन आ रहा है, सुमति देवी !

भट्टजी—वह तो होटल में कह आए हैं।

सुमति—आपने भोजन का निमंत्रण दिया था क्या ?

प्रभाकर—मैं तो सदा के लिये निमंत्रण दे रहा हूँ।

सुमति—तभी तो विचारणीय हो गया है।

दृश्य अष्ठम्

(अमृतसर में देवकी के पिता का मकान। देवकी के पिता लाला राधाकृष्ण और देवकी एक कमरे में बैठे हुये हैं।

राधाकृष्ण—देवकी ! यह आदमी तो बहुत ही लापरवाह प्रतीत होता

है। तुमने जो कथा बताई है, वह मेरे विचार की पुष्टि करती है।

देवकी—पिता जी ! वह बहुत ही योग्य आदमी है। उसको एक-एक लेख के सौ-सौ रुपया पारिश्रमिक मिलते हैं।

राधाकृष्ण—सत्य ? पर बेटी ! एक लेख कितने समय में लिखा जाता है ?

देवकी—कम से कम एक दिन तो लग ही जाता होगा।

राधाकृष्ण—तो इसको तुम बहुत बड़ा पारिश्रमिक समझती हो ? इतनी बड़ी-बड़ी रकमें तो हम ऐसे ही दान दक्षिणा में दे देते हैं।

देवकी—आप ठीक कहते हैं पिता जी ! परन्तु लेखन कार्य साहूकारा नहीं है। यह तो मज़दूरी है। एक पढ़े-लिखे आदमी की मज़दूरी। साहूकारा तो सरमाये की खुरचन है।

राधाकृष्ण—कुछ भी हो। निर्वाह के लिये तो धन चाहिये। वह कहाँ से आता है और कैसे आता है, विचारणीय नहीं है।

देवकी—पिता जी ! नहीं; यह धन की बात दूसरे दर्जे पर है। वास्तव में मैं उनसे प्रेम करने लगी हूँ। यह कोई सौदा नहीं। मैं तो उनके लेख तथा कविताएँ पढ़ पढ़ कर उनसे प्रेम करने लगी थी। जब मुझको पता चला कि उससे करुणा की बातचीत हो रही है, तो मैं उससे मिलने जाने के लिये तैयार हो गई। करुणा भी मेरे साथ तैयार हो गई थी। यद्यपि यह मुझको भला प्रतीत नहीं हुआ था, परन्तु मैं निर्णयात्मक बात करना चाहती थी। इस कारण हम दोनों चल पड़ीं। करुणा को मेरे मन के भावों का ज्ञान नहीं था। इस कारण उसने मेरे साथ चलने में आपत्ति नहीं की।

जहाँ पहिले मैं उनके गुणों से प्रभावित हुई थी, वहाँ उनकी रूप रेखा पर तो सर्वथा मोहित हो गई हूँ।

प्रभाकर जी भी मुझ से प्रेम करने लगे हैं। वे मुझे पत्र लिखने लगे हैं। करुणा भी उनको लिखती है, परन्तु शायद वे

उसको स्वीकर नहीं कर रहे।

(इस समय घंटी की आवाज़ आती है।)

देवकी—करुणा प्रतीत होती है

राधाकृष्ण—कैसे जानती हो ?

देवकी—उसके कॉलेज से आने का समय है। कदाचित् वह इसी विषय पर बातचीत करने आई है। जब जब भी कोई पत्र प्रभाकर जी से आता है, वह मेरे पास बताने आ जाती है।

(दरवाज़े की घंटी फिर बजती है।)

देवकी—पिता जी ! आप जाएँ, तो मैं दरवाज़ा खोलूँ।

राधाकृष्ण—मैं छुप कर तुम्हारी बातें क्यों न सुनूँ ? कदाचित् तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ।

(देवकी अन्यमनस्क भाव में देखती रह जाती है। राधाकृष्ण लपक कर पर्दे के पीछे छुप जाता है। फिर घंटी बजती है। देवकी आगे बढ़ कर द्वार खोलती है। करुणा भीतर प्रवेश करती है।)

करुणा—कितनी देर से घंटी बजा रही थी। क्या कर रही थी ?

देवकी—कपड़े पहन रही थी। तुम्हारी ओर ही जाने का विचार था।

करुणा—प्रभाकर जी का पत्र आया है।

(करुणा एक कुर्सी पर बैठ जाती है और देवकी उसके सामने बैठते हुये कहती है।)

देवकी—तब तो बहुत बधाई हो। क्या लिखा है उन्होंने ?

करुणा—कैसी बधाई ? लो देखो। पढ़ोगी तो पता चलेगा।

(करुणा अपने बैग में से पत्र निकालकर पढ़कर सुनाती है।)

करुणा—प्रिय करुणा देवी !

यह छोटी सी जीवन नौका सागर की लहरों पर चल दी
पल पल में लहरों के थपके ले चले इसे जल्दी जल्दी।
आकाश में वायु के झोंके नहीं हैं नाविक के बस के,

अब नाव नहीं चल सकती है न रोकर के न हँस हँस के।
अब नौका मेरी है बेबस न जानूँ किधर को चलती है
कभी पूर्व कभी पश्चिम को फिर जल्दी दिशा बदलती है।
मन में आता है चलने दूँ किस्मत पर इसको मैं अपने
जब मन में काबू ही न रहा तो क्यों किसके लूँ मैं सपने।
इस डाँवाडोल अवस्था में सबको ही मैं यह कहता हूँ,
चल पड़ा सफर पर मैं ऐसे पथ पर अनन्त ही रहता हूँ।
अब नमस्कार मेरी ले लो सब मित्रों से यह कह देना,
विस्मरण करो मुझको मन से खुश रहो जहाँ पर हो रहना ॥

(करुणा पत्र पढ़कर एक लम्बा साँस खेंचती है।)

देवकी—तो यह बात है।

करुणा—बड़ा पाजी है यह लेखक।

देवकी—पर कविता तो सुन्दर करता है।

करुणा—बन्दर सा कहीं का।

देवकी—सूरत सीरत तो अच्छी है।

करुणा—मन का काला है।

देवकी—लेख भी अच्छे लिखता है।

करुणा—सब बकवास है।

देवकी—देखो, कैसा सुन्दर कहा था—

जब समझ सका था कुछ कुछ ही,
तब पंख रात ने फैलाए।
उदय हुई थी मधुर चन्द्रिका,
तब चन्द्र देव थे चढ़ आए ॥

करुणा—यह सब मुख से निकली बात है। हृदय से नहीं।

देवकी—तो उसका ध्यान छोड़ रही हो ?

करुणा—भैया को हमारे दिल्ली जाने का पता है और उनको उनके पत्रों का भी पता लग गया है। वे कह रहे हैं कि यह ठीक आदमी नहीं। मैंने ही हठकर कहा था कि इनसे ही विवाह करूँगी ? कुछ समझ में नहीं आ रहा।

देवकी—इतनी जल्दी निराश होने की बात नहीं। यदि तुम उससे प्रेम करती हो तो उसको फिर लिखो। उसको लिखो कि तुम उसको वर चुकी हो।

करुणा—अभी तक तो ऐसा ही समझती थी, परन्तु इस पत्र के पश्चात् तो कुछ आशा नहीं रही।

देवकी—करुणा बहिन ! निराश न हो। तुम उसको लिखो। वह अभी डाँवाडोल है। ऐसा आदमी बहुत अच्छा पति सिद्ध होगा।

करुणा—यह क्यों ? मैं तो समझती हूँ कि विवाह के पश्चात् भी वह भटकता रहेगा।

देवकी—नहीं करुणा ! जो आदमी मन की दृढ़ता नहीं रखता, वह सदा अपनी पत्नी का दास बन कर रहता है।

करुणा—अच्छी बात है। यत्न करती हूँ।

देवकी—तो लो कागज़ और अभी लिखो।

(करुणा देवकी का राइटिंग पैड लेती है। अपने बैग में से पैन निकाल कर लिखती है। पत्र लिखने के पश्चात् देवकी को वह पढ़ कर सुनाती है।)

करुणा—सेवा में कवि जी महाराज !

पत्रिका पहुँची है ऐसे ज्यों धूमकेतु सिर पर आ धमका,
जग में सब अपशकुन हुए इससे मन मेरा है ठनका।
समझी थी पाया मूल तत्व मैंने इस जग में जीवन का,
कर बैठी थी अर्पण सारा अर्जित लेखा जोखा मन का॥
जो पूजा की थी सामग्री, थी श्रद्धा से सब भेंट करी,

धर दी चरणों पर लाकर के थी लोक लाज सगरी बिसरी ।
कुछ रहा नहीं शेष हृदय में लो उभार अब इस अधीन को,
भले देवता तनिक निहारो न ठुकराओ इस भक्त दीन को ॥
दे सब कुछ हूँ कंगाल भयी मैं डोलत हूँ जग में पगली,
निराधार अब तो रहती हूँ सुध बुध भूली पिछली अगली ।
हे महान इस मन के माली फुलवाड़ी को छोड़ न देना,
अब मधुर प्रेमभरी दृष्टि से तुम हरी भरी यह कर लेना ॥
जब फूल नहीं हैं पूजा को पत्रों को ही स्वीकार करो,
मत लोभ करो अनहोनी का हूँ जैसी अंगीकार करो ।
कुछ लिख देना मुझको ऐसा, जिससे मन में संतोष बढ़े,
कुछ कह देना अधरों से तो मन मोर जूमरा नाच खड़े ॥
करुणा के सागर हो नागर मन में करुणा को भर कर के,
सुख सुविधा बरसाओ अब तो भगवान से कुछ तो डर कर के ॥

(पत्र पढ़ कर करुणा लिफाफे में बन्द कर देवकी को देकर कहती है ।)

करुणा—भैया से चोरी भेज रही हूँ । तुम डाक में डलवा देना ।

देवकी—तुम चिन्ता न करो । इससे तो पत्थर का हृदय भी पसीज उठेगा ।

(देवकी पत्र ले उठ पड़ती है । करुणा भी चिन्ता ग्रस्त मुख लिए उठ खड़ी होती है और कमरे से निकल जाती है । करुणा के चले जाने पर राधाकृष्ण पर्दे के पीछे से निकल आता है । कुर्सी पर बैठते हुए कहता है ।)

राधाकृष्ण—देवकी ! तुम महामूर्ख हो ।

देवकी—क्यों पिता जी ?

राधाकृष्ण—अरी ! अपनी दुकान का माल छोड़ दूसरों की एजैन्टी करने लगी हो ।

देवकी—पिता जी ! आप समझे नहीं । अब इस पत्र के स्थान मैं अपना पत्र भेजूँगी ।

राधाकृष्ण—ओह ! समझा ।

(इतना कह राधाकृष्ण खिलखिलाकर हँस पड़ता है ।)

देवकी—पिता जी ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

राधाकृष्ण—क्यों ?

देवकी—इस प्रकार हँस कर आपने एक प्रकार से प्रभाकर जी से विवाह की स्वीकृति दे दी है ।

राधाकृष्ण—पगली ! तुम्हारी प्रसन्नता ही तो मेरे जीवन का लक्ष्य रह गया है । तुम मेरी एक ही सन्तान हो । मैं सब कुछ तुम्हारे लिए ही कर रहा हूँ । अच्छा अब अपना पत्र लिखो । चलो, मैं लिखाता हूँ । ऐसा लिखाऊँगा कि वह इन्कार नहीं कर सकेगा ।

(देवकी लिखने बैठ जाती है और राधाकृष्ण लिखाता है ।)

राधाकृष्ण—लिखो—

प्रियवर, आपका पत्र अभी पढ़ ही रही थी और आपके मन के उद्‌गारों को अभी समझ ही रही थी कि करुणा आपके उसको भेजे पत्र को लेकर आ गई । बहुत कठिनाई से आप का पत्र छुपा सकी हूँ ।

करुणा आपके पत्र पर आग बबूला हो रही थी । उसमें आप ने उसको अस्वीकार कर दिया है, इसकी वह आशा नहीं करती थी । इसके विपरीत तो वह समझती थी कि आपसे विवाह कर वह आप पर एहसान कर रही है ।

यद्यपि मुझको करुणा पर दया आती है, परन्तु आपका मुझ को चरणों में स्थान देना तो बहुत ही भला लग रहा है । जहाँ करुणा का आपके प्रति रोष तो सर्वथा असंगत प्रतीत हुआ है, वहाँ मैं अपने लिए यह ही कह सकती हूँ···

(इतना लिखकर राधाकृष्ण देवकी से कहता है।)

राधाकृष्ण—यहाँ कोई अच्छा सा दोहा लिख दो।

(देवकी कुछ क्षण सोचती है, पश्चात् बोलती हुई लिखती है।)

देवकी—

मन मन्दिर के देवता आई मैं तेरे द्वार,
ठुकराओ जै बार तव नाम जपूँ तै बार।
जब रूठो पकड़ूं चरण कभी न मानूँ हार,
झुक जाने से होत है विजित सकल संसार॥

राधाकृष्ण—हां तो आगे लिखो—

यदि एक भी पंक्ति आप लिखेंगे, तो पिता जी दिल्ली आकर बात पक्की कर जाएँगे। वे मेरे जल्दी विवाह के लिए बड़े उत्सुक हैं। इसी निमित्त मेरे विवाह पर देने के लिए उन्होंने बीस हज़ार पृथक रखा हुआ है।

देवकी (लिखना छोड़, विस्मय में)—सत्य पिता जी!

राधाकृष्ण—हाँ।

अंक दो

दृश्य प्रथम

(केसरगंज। एक छोटे से, परन्तु साफ सुथरे मकान में एक कमरा। एक ओर, लगभग पचास वर्ष की आयु की एक स्त्री बैठी चर्खा कात रही है। एक पड़ोसिन कमरे में प्रवेश करती है और उस वृद्धा के समीप ही बैठ जाती है।)

पड़ोसिन—बहिन चंचल! कीर्ति के विषय में प्रभाकर को लिखा है क्या?

चंचल—हाँ लिखा तो था, परन्तु उसका उत्तर अभी तक नहीं आया। पता नहीं क्यों?

पड़ोसिन—क्या लिखा था तुमने?

चंचल—मैंने लिखा था कि अब वह कमाता है। उसके पास रुपया भी जमा हो रहा है। अब उसको अपना घर बसा लेना चाहिए। कीर्ति के विषय में लिखा था कि वह मुझे बड़ी प्यारी लगती है।

पड़ोसिन—तो उसका उत्तर क्यों नहीं आया?

चंचल—मैं क्या जानूँ?

पड़ोसिन—बहिन! इस प्रकार बैठे बैठे चर्खा कातने से काम नहीं बनेगा। उसको या तो यहां बुला लो अथवा दिल्ली जाकर बात करो।

चंचल—देखो बहिन सुभद्रा! यह विवाह की बात है। मैं उसकी रुचि के विरुद्ध कुछ नहीं करूँगी। मैंने इस संसार में और कितने दिन जीना है। पीछे तो उसको अपनी बहू के साथ ही निर्वाह करना है न।

सुभद्रा—तुम कहती ठीक हो। इसी लिए तो कहती हूँ कि चल कर बात

कर लो। अब तो वह भी तीस के लगभग का हो गया है। कब तक कुँवारा बैठा रहेगा ? बूढ़े हो कर विवाह करने में कुछ मज़ा है क्या ?

चंचल—मैं उसको लिखती हूँ कि यदि उसने उत्तर नहीं देना तो मैं वहां आकर ही निर्णय कर लूँगी।

(इस समय बाहर से आवाज़ आती है—चिट्ठी है चंचल देवी की।)

सुभद्रा—लो चिट्ठी आ गई है। उसी की होगी।

(चंचल कमरे के बाहर जाती है और चिट्ठी हाथ में लिए हुए आती है। चिट्ठी खोल कर देखती है और सुभद्रा को पढ़ कर सुनाती है।)

चंचल—

पूज्य माता जी, चरण वंदना। पत्र आपका मिला। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी जन्म पत्री में मेरा विवाह इसी वर्ष में लिखा है। मुझको दिल्ली में आए दस वर्ष हो चले हैं। यहाँ मेरा परिचय सैकड़ों से है। उनमें स्त्रियाँ, पुरुष, लड़के, लड़कियाँ सब हैं। इस पर भी अभी तक किसी ने विवाह का प्रस्ताव नहीं किया था। अब एकाएक मुझको कई स्थानों से विवाह के प्रस्ताव आए हैं। इधर तुम भी लिख रही हो।

कीर्ति की धुंधली सी स्मृति मुझको है। वह बिखरे बालों वाली, अस्त व्यस्त कपड़े पहिने, घर से बाहर धूरि में खेलने वाली, मौसी सुभद्रा की लड़की ही तो है न ?

अब वह कैसी है, कितनी पढ़ी है ? कपड़े कैसे पहिनती है ? कितनी बड़ी दिखाई देती है ? और माँ से लड़ती है या नहीं ? इन सब बातों को जाने बिना कैसे विवाह की बात कर सकता हूँ। जैसी कीर्ति की स्मृति मेरे मन में है, वैसी तो मेरे विवाह के योग्य नहीं है।

माँ ! एक धनी भाई की बहिन से और एक अन्य धनी

बाप को बेटी से, विवाह की बातचीत एक साथ चल रही है। एक स्थान से तो बीस हजार के दहेज की बात भी हो रही है। बीस हजार के साथ ही साथ वह लिखती है—

मन मन्दिर के देवता आई मैं तेरे द्वार।
ठुकुराओ जै बार तव नाम जपूँ तै बार॥

यह धनी बाप की बेटी है। बताओ कीर्ति भी कविता कर सकती है क्या ? माँ ! एक और है। बहुत बड़े कवि की बेटी है। कविता करती है और बहुत सुन्दर गाती है। रेडियो पर उसके गाने होते हैं। दस मिनट गाने के तीस रुपए लेती है। बताओ कीर्ति गा सकती है क्या ?

माँ ! यदि अब भी तुम्हारी इच्छा है कि कीर्ति से विवाह होना ही चाहिए, तो मैं समझता हूँ कि उसको तुम अपने घर में ले आओ। वह बुढ़ापे में तुम्हारी सेवा कर दिया करेगी। नगर में एक अनपढ़ पत्नी का पति होने से मेरी हंसी उड़ेगी ·····।

सुभद्रा—प्रभाकर को जब धनियों की लड़कियाँ मिल रही हैं तो कीर्ति को वह कब पसन्द करेगा ?

चंचल—उसको नगर की हवा लग गई प्रतीत होती है। वह गाती है, वह नाचती है, वह नौकरी करती है, क्या बहकी-बहकी बातें करता है ? ये काम क्या पत्नी के हैं ?

देखो बहिन सुभद्रा ! मैं दिल्ली जा रही हूँ और उसको कान से पकड़ कर सीधा कर यहाँ ले आऊंगी। वह तितलियों के पीछे भागने लगा है।

सुभद्रा—बहिन ! तुमने ही कहा था कि कीर्ति तुम्हारी बहू बनेगी। वह बात कीर्ति के मन में बैठ गई है। हम भी अभी तक तुम्हारे ही आश्रय बैठे हैं। जाने से पहिले मिलना। कुछ लेने देने की बात हो तो बताना।

चंचल—छीः छीः कैसी बातें करती हो ? क्या मैं लड़का बेचने जा रही हूँ ? अब तो दिल्ली से लौटकर ही बात करूंगी।

(सुभद्रा उठकर जाने लगती है। फिर एकाएक खड़ी हो कहती है।)

सुभद्रा—मैं समझती हूँ कि एक बार कीर्ति को देख लेता तो बात सुगम हो जाती।

चंचल—यह भी प्रबन्ध कर दूँगी। एक बार वहाँ से हो आने दो।

(सुभद्रा चली जाती है। चंचल पुनः पत्र पढ़ने लगती है। पत्र धीरे-धीरे, परन्तु स्वर से पढ़ती है। इस समय एक लड़की कमरे में धीरे से प्रवेश करती है और चंचल के पीछे खड़ी हो पत्र सुनती है। पत्र समाप्त कर चंचल क्रोध में कहती है।)

चंचल—पागल ! मूर्ख ! आती हूँ, तुम्हारे कान खेंचती हूँ।

लड़की—मौसी !

(चंचल चौंक उठती है और घूम कर लड़की की ओर देखती है।)

चंचल—कौन कीर्ति ? आओ बेटी ! बैठो। कब से खड़ी हो ?

कीर्ति—अभी तो आई हूँ मौसी ! यह क्या पढ़ रही थीं ? कौन है पागल, मूर्ख ?

(चंचल घबरा कर पत्र को लपेट छुपाने के लिए अंटी में घुसेड़ती है। कीर्ति चंचल के गले में लाड से बाँह डालकर समीप बैठ जाती है।)

कीर्ति—मौसी ! क्या छुपा रही हो मुझसे ? तुम तो कहती थीं कि मैं इस घर की मालकिन हूँ। मालकिन से भी क्या कोई वस्तु छुपाई जाती है ?

चंचल—कीर्ति बेटा ! कुछ वस्तुएं होती हैं जो विवाह से पहिले देखने में अपशकुन होता है।

(कीर्ति का मुख लज्जा से लाल हो जाता है। उसकी बांह की पकड़ चंचल के गले में ढीली पड़ जाती है और उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं।)

चंचल—क्यों बेटा ! क्या होगया है ? बस इतनी सी बात पर रोने लगी हो ? बेटी ! तुम्हारा विवाह होगा। तब तुमको यह और अन्य कई बातें बताऊंगी। तुमको तो पूछना ही नहीं चाहिए कि विवाह की तैयारी कैसे की जा रही है।

(कीर्ति रोती हुई और आँचल से आँसू पूँछती हुई कमरे से बाहर निकल जाती है।)

दृश्य द्वितीय

(प्रभाकर का कमरा। प्रभाकर और उसके दो मित्र, नन्दलाल तथा सुशील बैठे चाय पी रहे हैं। सुशील के हाथ में एक पुस्तक की पाँडुलिपि पकड़ी है।)

सुशील—तो यह पुस्तक भी पूर्ण हो गई है ?

प्रभाकर—हाँ।

सुशील—पर इसका नाम कुछ जंचा नहीं।

प्रभाकर—क्या खराबी है इसमें ?

सुशील—'दास्ता के आनन्द'। यह विरोधाभास है। दासता और आनन्द परस्पर विरोधी शब्द हैं।

प्रभाकर—सुशील ! यह साहित्य है। किसी वस्तु की हंसी उड़ाने के लिए ऐसे वाक्य घड़े जाते हैं।

सुशील—एक बात और है। इसमें कुछ चित्र अति नग्न हैं। साहित्य इतना नग्न और कटु नहीं होना चाहिए। इसके लिए जो कुछ भी लिखा जाए, वह चीनी में लपेटा हुआ हो तो तभी ठीक प्रतीत होता है।

प्रभाकर—और यदि खड़ी खड़ी सुनाई जाएं तो क्या होता है ?

सुशील—लोग पढ़ते नहीं। वह निरस हो जाता है।

प्रभाकर—देखो सुशील ! कलाकार इस लिए नहीं लिखता कि उसकी कृति कोई पढ़ता है अथवा नहीं। वह तो अपने अन्तरात्मा की पुकार को अंकित करना चाहता है। पुस्तक में लिखे शब्द अथवा वाक्य, चित्र में अंकित रेखाएं तथा रंग, कविता में मात्रा, लय तथा अलंकार, ये सब तो माध्यम हैं, जिन में कलाकार अपने अन्तरात्मा की बात लिखता है। उसकी कृति कौन पढ़ता है और कौन नहीं पढ़ता, उसके सम्मुख विचार्य विषय नहीं।

सुशील—मित्र ! इस पर भी यदि पढ़ने वाले नहीं होंगे तो लिखने का प्रयोजन ही नहीं रह जायेगा।

प्रभाकर—मान लेता हूँ कि मेरी यह पुस्तक 'दास्ता में आनन्द' कोई भी पढ़ना नहीं चाहेगा। इस कारण तुम इसको नहीं छाप रहे न ?

सुशील—ओह, हो ! बस रहने दो प्रभाकर ! तुमने मुझे समझने का यत्न नहीं किया। पुस्तक छप जाएगी। पर इसके छपने न छपने से क्या सम्बन्ध इसके अच्छी या बुरी होने से ?

नन्दलाल—वही सम्बन्ध है, जो विवाह होने न होने का है, बुद्धि के संतुलित होने न होने से।

प्रभाकर—अर्थात कोई सम्बन्ध नहीं।

नन्दलाल—खूब समझे हो मित्र ! देखो सुशील ! इसकी सगाई के लिए तीन लड़कियां यत्न कर रही हैं, परन्तु यह कभी किसी को पसन्द करता है और कभी किसी को। परिणाम यह हो रहा है कि यह अभी तक कुँवारा बैठा है।

प्रभाकर—बहुत ही युक्ति की बात की है हमारे विवाहित मित्र ने। यदि मैं अभी तक कुँवारा हूँ तो अभी तक पत्नी के राज्य से बचा हुआ भी हूँ। इस पर भी मेरी बुद्धि असन्तुलित है, कैसे पता चले ?

सुशील—इस प्रकार कि तुम में अपनी आलोचना सुनने की शक्ति नहीं है।

प्रभाकर—तो क्या समालोचना करने वालों को विवाह की आवश्यकता नहीं ?

नन्दलाल—खूब कही प्रभाकर दादा ने। सुशील ! तुम कब विवाह कर रहे हो ?

सुशील—मेरी सगाई तो हो गई है। विवाह भी हो जाएगा। इसी से कहता हूँ कि बुद्धि असन्तुलित होने से पहिले ही हो जाएगा। पर मैंने सुना था कि प्रभाकर को अमृतसर से कोई देखने आई थी।

नन्दलाल—आई थी नहीं, आई थीं। दो लड़कियाँ थीं। दोनों हमारे मित्र को पसन्द कर गई हैं, परन्तु हमारे मित्र उनको छोड़ कर एक मथुरा वाली के पीछे भाग रहे हैं। देखें, कहाँ सफल होते हैं।

प्रभाकर—नन्दु भैया ! मेरी बात तो हो जाएगी। पहिले जिसकी सगाई हो चुकी है, उससे पूछो कि कहां हुई है। क्यों सुशील ! कहाँ हुई है ? हमारी होने वाली भाभी कैसी है ? तुमने तो देखी होगी।

नन्दलाल—हाँ सुशील ! बारात में जाने की तैयारी हम कब शुरू करें ? कहाँ जाना होगा ?

सुशील—मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि बारात मथुरा जाएगी। इससे अधिक कुछ नहीं जानता।

प्रभाकर—किसकी लड़की है ? नाम क्या है ?

सुशील—सब कुछ पिता जी को मालूम है। मुझे तो केवल इतना पता है कि मेरे स्वसुर मेरे पिता जी के बचपन के मित्र हैं। परन्तु मैं उन्हें नहीं जानता। नाम-धाम भी पता नहीं।

प्रभाकर—तुम भी बुद्धू हो सुशील ! बिना देखे भाले विवाह के लिए तैयार हो गए। किसने पसन्द किया है तुम्हारी बीवी को ?

सुशील—यह भी मुझको पता नहीं।

प्रभाकर—अपनी होने वाली पत्नी का चित्र तो देखा होगा ?

सुशील—पिताजी ने भेजा नहीं। मैंने माँगा नहीं।

प्रभाकर—अभिप्राय यह कि तुम्हारा विवाह हो रहा है। एक उससे, जिसको तुमने देखा नहीं, जिसका तुम नाम नहीं जानते और जिस के परिवार के विषय में तुम नहीं जानते।

सुशील—पिताजी ने अवश्य यह सब कुछ देखा और समझा होगा।

प्रभाकर—तो तुम उनके देखने और अपने देखने में अन्तर नहीं समझते ?

सुशील—अन्तर तो मानता हूँ। इस पर भी उनकी पसन्द को अपनी पसन्द से श्रेष्ठ मानता हूँ।

प्रभाकर—मैं तो समझता हूँ कि तुम न केवल अशिक्षित बुद्धि हो, प्रत्युत शिथिल बुद्धि भी हो।

सुशील—तुम ठीक कहते प्रभाकर ! परन्तु केवल अपने पिता जी की तुलना में ही मैं अपनी बुद्धि को शिथिल मानता हूँ। इसी कारण उनकी सम्मति को मान रहा हूँ। एक दिन उनका एक पत्र आया कि मेरी सगाई कर दी गई है। बस आगे कहने सुनने को कुछ नहीं रहा और उनकी पसन्द मेरी पसन्द हो गई।

प्रभाकर—सुशील ! तुम व्यापारी प्रवृत्ति रखते हो। अवश्य भारी दहेज की आशा कर रहे होगे। इस बीसवीं शताब्दि में हज़रत नूह काल के जीव हो।

(सुशील हँसता है और बात बदलने के लिए मेज़ पर रखे रेडियो का स्विच खोल देता है। रेडियो के दिल्ली स्टेशन से किसी के मधुर स्वरों में गाने की आवाज़ आती है।)

रेडियो—

नयनों की बूँदों से माला अब मैंने इक पिरो डाली।
पहिनाने हार चली बाँहें थी दूर पहुँच से वह आली॥

प्रभाकर—अरे ! यह क्या ?

सुशील—क्यों ? क्या हुआ है ?

नन्दलाल—यह तो तुम्हारी तस्वीर वाली मालूम होती है।

प्रभाकर—हाँ, है तो सुमति ही।

सुशील—तो फिर क्या हुआ ? इसमें अचम्भा किस बात का है ? वह रेडियो में गाती नहीं क्या ?

प्रभाकर—पर वह दिल्ली आई और मुझसे मिली तक नहीं। ठहरो।

(प्रभाकर मेज़ पर रखी 'लिसनर' की नई प्रति में उस दिन का कार्यक्रम देखता है। सामने लगे 'क्लाक' में समय देख वह 'लिसनर' में से पढ़ता है।)

प्रभाकर (पढ़ते हुए)—साढ़े दस बजे से पौने ग्यारह बजे तक कुमारी सुमति भट्ट मथुरा वाली। सारंग में एक पद—'नयनों की बूँदों से माला·····।'

प्रभाकर—इस बार उसने आने की सूचना तक नहीं दी। अवश्य कुछ गड़-बड़ है।

सुशील—क्या गड़बड़ हो सकती है ?

नन्दलाल—कदाचित वह दादा से विवाह करना नहीं चाहती।

(प्रभाकर गम्भीर विचार में पड़ जाता है। फिर एकाएक सुशील से कहता है।)

प्रभाकर—सुशील ! एक काम करो। तुम इस लड़की से इसकी कविताएँ छापने के बहाने मिलने का यत्न करो। मिलकर यह जानने का यत्न करो कि वह मुझसे मिलने क्यों नहीं आई ?

सुशील—कहाँ मिलेगी यह ?

प्रभाकर—यह तथा इसके पिता विश्वम्भर भट्ट प्रायः रीगल होटल में ठहरा करते हैं।

सुशील—अच्छा देखो, प्रयत्न करता हूँ।

(सुशील जाने के लिए उठता है। इसी समय बाहर से घंटी बजती है।)

नन्दलाल—प्रभाकर, लो डाक आ गई। तुम्हारे लिए तो काम हो गया।

प्रभाकर—नन्दलाल ! तुम यहीं ठहरो। मैं डाक ले आता हूँ। सुशील ! तुमको मिलने जाना चाहिये।

(सुशील तथा प्रभाकर दोनों बाहर निकलते हैं। सुशील चला जाता है और प्रभाकर डाक ले कर अन्दर आता है। वह तथा नन्दलाल दोनों डाक देखते हैं।)

नन्दलाल (एक पत्र देखते हुए)—सुशील ! देखो यह माता जी का पत्र मालूम होता है। केसरगंज से आया है।

(प्रभाकर अन्य डाक छोड़ नन्दलाल से वह पत्र ले लेता है और खोलकर पढ़ता है। एक बार पढ़ चुकने पर वह नन्दलाल को सुनाता है।)

प्रभाकर—नन्द भैया ! यह भी सुन लो। माँ लिखती हैं—

आयुष्मान प्रभाकर !

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़ कर यह समझ में आया कि नगरों की विषम समाज में रहकर तुम्हारी बुद्धि भी विषम हो गई है। तुम अपने लिए पत्नी ढूँढते-ढूँढते अपनी पुस्तकों की नायिका ढूँढने लग जाते हो।

बेटा ! कोई नाच सकती है अथवा नहीं; कोई गा सकती है अथवा नही। कोई तीस रुपया घंटा कमा सकती है अथवा सौ रुपया, ये गुण पत्नी के हैं क्या ? तुम इतने पढ़ लिख गए हो और बात मेरे जैसी देहाती स्त्री की भाँति भी नहीं समझ सकते। कोई सुन्दर लड़की है, तो उसका चित्र अपने कमरे में लगा छोड़ना। कोई मधुर गाती है, तो उसके गाने का रिकार्ड भरवा लेना।

परन्तु पत्नी का काम है तुम्हारे साथ जीवन भर रह कर तुम को आराम पहुँचाना, तुम्हारी सन्तान की योग्य मां बनना और तुम में प्रीति तथा भक्ति रखना।

मैं समझती हूँ कि कोई कारण है, जिससे तुम उचित-अनुचित, उपयुक्त, अनुपयुक्त हित-अहित मेंभेद भाव जानने की शक्ति खो बैठे हो। अतः मुझ वृद्धा को अब दिल्ली की यात्रा करनी पड़ेगी। भगवान तुमको सुमति दे।

मैं बृहस्पतिवार साढ़े दस बजे की गाड़ी से दिल्ली पहुँच रही हूँ। देखो, घर पर ही रहना। मैं स्टेशन से टैक्सी कर पहुँच जाऊँगी। कहीं ऐसा न हो कि मुझे मकान के बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा रहना पड़े।

तुम्हारी स्नेहमयी माता, चंचल।

प्रभाकर—लो भैया! एक और मुसीबात आई। (घड़ी में समय देख कर) ग्यारह बज रहे हैं। माँ के आने का समय हो गया है।

दृश्य तृतीय

(रायल होटल कमरा नम्बर ग्यारह में विश्वम्भर भट्ट बैठे हुए रेडियो सुन रहे हैं। रेडियो में से आवाज़ आ रही है—)

आवाज़—अभी आपने कुमारी सुमति मथुरा वाली से सारंग में एक पद सुना। अब आप·····।

(भट्टजी इतना सुन रेडियो बंद कर देते हैं। मेज़ पर रखी घंटी बजाते हैं। एक नौकर कमरे में प्रवेश करता है।)

भट्टजी—यह रेडियो मैनेजर साहब के पास ले जाओ और उनको हमारा सलाम कह कर धन्यवाद देना।

(नौकर रेडियो उठाकर ले जाता है। भट्ट जी गंभीर हो विचार मग्न हो जाते हैं। काफी देर तक इस प्रकार बैठे रहते हैं। इस समय द्वार पर सुशील आ खड़ा होता है। भट्टजी प्रश्नभरी दृष्टि में उसक

ओर देखते हैं।)

सुशील—क्या मैं भीतर आ सकता हूँ ?

भट्टजी—आईए।

सशील (कमरे में प्रवेश कर)—क्या मैं श्री विश्वम्भर भट्टजी से बात कर रहा हूँ ?

भट्टजी—हाँ ! फरमाईए। तशरीफ रखिए।

(सुशील एक कुर्सी पर बैठ जाता है।)

सुशील—मैं दिल्ली का एक पुस्तक प्रकाशक हूँ। मैं अभी-अभी एक सुमति देवी का गाना सुन रहा था। उन्होंने एक अति सुन्दर कविता गाई थी। मैं चाहता हूँ कि यदि उनके पास कुछ अन्य ऐसी कविताएं हों, तो उनका संकलन मैं प्रकाशित करूँ। इस कारण रेडियो स्टेशन से उनका पता मालूम कर यहाँ आपके पास आया हूँ। क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ ?

भट्टजी—वह तो अभी स्टेशन से लौटी नहीं। अभी आजाएगी। इस बीच क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?

(सुशील अपनी जेब में से अपना कार्ड निकाल भट्टजी के हाथ में देता है। भट्ट जी कार्ड को पढ़ते हैं। कार्ड पर लिखा है—सुशील प्रिन्टर्ज़ ऐण्ड पब्लिशर्ज़, ७ दरियागंज, दिल्ली। कार्ड पढ़कर भट्ट जी आश्चर्य-चकित हो सुशील के मुख पर देखने लगते हैं।)

सुशील—आप क्या देख रहे हैं मेरे मुख पर ? इस कार्ड पर आपको विश्वास नहीं आया क्या ?

भट्टजी—नहीं, यह बात नहीं। सुशील जी ! आप रहने वाले कहाँ के हैं ?

सुशील—मेरे पिता नैनीताल में रहते हैं। वहाँ वे कस्तूरी तथा केशर आदि का व्यापार करते हैं। उनका नाम है पंडित सोम देव जी।

भट्टजी—ओह ! देखिए सुशील जी ! नैनीताल में एक सोमदेव मेरे

मित्र हैं और उनके सुपुत्र भी·····।

(इस समय सुमति कमरे में प्रवेश करती है।)

भट्टजी—लो, सुमति आगई है।

(सुमति एक अपरिचित युवक को कमरे में बैठा देख संकोच में दोनों को देखने लगती है। वह दरवाज़े में ही खड़ी रह जाती है। भट्ट-जी उसको देख कहते हैं।)

भट्टजी—सुमति! आओ बेटा! ये तुमसे तुम्हारी कविताएं छापने के विषय में बातचीत करने आए हैं।

(सुमति हाथ जोड़ कर नमस्कार करती है और समीप ही एक रिक्त कुर्सी पर बैठ जाती है।)

सुमति—फरमाइए।

सुशील—मैं सुशील प्रिन्टर्ज ऐंड पब्लिशर्ज़ का मालिक हूँ। मैंने अभी कुछ देर पहिले रेडियो पर आप से गाया हुआ गीत सुना था और यह विचार कर कि आपके पास ऐसी अन्य कविताएँ भी होंगी, उनको छापने के लिये आपसे लेने चला आया हूँ।

(सुमति सुशील का परिचय प्राप्त कर आवाक् बैठी रह जाती है। भट्टजी उसकी घबराहट देख कहते हैं।)

भट्टजी—सुमति! बहुत अच्छा अवसर है कविताएँ छपवाने का। मैं यह समझता हूँ कि इस विषय में बातचीत कर लेनी चाहिये।

सुमति (मुस्कराते हुए)—आपने पहिले भी किसी अच्छे लेखक की रचनाएँ प्रकाशित की हैं क्या?

सुशील—हाँ—हाँ! क्यों नहीं? आपने प्रभाकर मिश्र जी का नाम सुना होगा। उनकी प्रायः सभी रचनाओं का प्रकाशक मैं ही हूँ। अभी भी एक पाँडुलिपि उनकी हमारे पास प्रकाशनार्थ पड़ी है।

भट्टजी—मैं समझता हूँ कि भोजन करते करते बातचीत हो तो ठीक रहेगा। हमने एक बजे की गाड़ी से लौट जाना है। आप भी

खाना खाएँगे क्या ?

सुशील—जी नहीं ; मेरा भोजन तो घर पर तैयार होगा।

भट्टजी—तो क्या हुआ ? यहाँ खाली बैठे बातें करना ठीक नहीं लगेगा।

(भट्टजी घंटी बजाते हैं। बैरा कमरे में प्रवेश करता है। भट्टजी उसको तीन लोगों के खाने का आर्डर देते हैं। बैरा चला जाता है।)

सुशील—प्रभाकर जी की पिछली पुस्तक 'पागल के स्वप्न' तीन सहस्त्र छपवाई थी और एक वर्ष से कम काल में ही संस्करण समाप्त हो रहा है। और भी कई अच्छे लेखकों के हम प्रकाशक हैं।

(सुमति आंखें नीचे किए हुए चुपचाप बैठी रहती है।)

सुशील—मैंने अभी रेडियो पर आपका कविता गायन सुना है। इसमें—

आँखों में मेरे वह निखरी सिन्दूरी ऊषा की रानी।
हाथों पर मेरे आ चमकी बन लाल परी वह मन मानी॥

यह तो बहुत ही सुन्दर बन पाई है। आप की ही रचना है न ?

(सुमति आँखें उठाकर सुशील की ओर देखती है, पश्चात् पुनः आँखें नीची कर लेती है। भट्टजी कहते हैं।)

भट्टजी—इस कवि की रचनाएँ तो बहुत हैं, परन्तु वे अज्ञात ही रहना चाहते हैं।)

सुशील—कुछ हानि नहीं। हम एक अज्ञात कवि के नाम से उनको प्रकाशित कर देंगे। इस पर भी उसको उचित पारिश्रमिक तो मिलेगा ही।

सुमति (कुछ विचार कर)—आपका 'पागल के स्वप्न' के लेखक से कब का परिचय है ?

सुशील—दस वर्ष से ऊपर हो गए हैं। पहिली बार मिलने के समय मैं विद्यार्थी था। तब तो मैं उनकी कविता सुन उनसे मिलने गया था। धीरे-धीरे वह परिचय मित्रता में बदल गया और अब मैं उनकी रचनाओं का प्रकाशक भी हूँ।

सुमति—मिश्र जो की पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं। वे इतनी सुलझी हुई होती हैं कि सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे काफी बड़ी आयु के होंगे। क्या आयु होगी उनकी ?

सुशील—वे अभी अट्ठाईस-उनतीस वर्ष की आयु के हैं; इस पर भी उनका अनुभव काफी है।

सुमति—विवाह तो हो चुका होगा उनका ?

सुशील—नहीं; यूँ तो विवाह के लिए बहुत से सन्देश आ रहे हैं। परन्तु वे एक लड़की से प्रेम करते हैं और उसके कारण अन्य सम्बन्ध अस्वीकार कर चुके हैं। सुनते हैं कि वह लड़की मथुरा की ही रहने वाली है।

भट्टजी (आश्चर्य प्रकट करते हुए)—ओह ! उस लड़की को तो मैं जानता हूँ। यह तो बहुत बुरा हुआ है। उस लड़की का पिता हमारा पड़ोसी है। उसने काफी जाँच पड़ताल कर यह उचित समझा है कि प्रभाकर जी उसकी लड़की के पति होने के योग्य नहीं हैं।

(सुशील इस पर आश्चर्य प्रकट कर भट्टजी के मुख पर देखकर कहता है।)

सुशील—तो आपका प्रभाकर जी से परिचय है ?

(इस समय बैरा भोजन लेकर आता है और बीच में रखी मेज पर लगाने लगता है। बैरा के चले जाने के पश्चात् सुमति पूछती है।)

सुमति—आप पिछली बार प्रभाकर जी से कब मिले थे ?

सुशील—आज प्रातः काल ही। उनकी नवीन पुस्तक 'दास्ता के आनन्द' की पाँडुलिपि लेने गया था।

सुमति—तो क्या प्रभाकर जी को विदित नहीं कि अब उनका विवाह मथुरा में संभव नहीं ?

भट्टजी (सुशील को उत्तर देने का अवसर न देते हुये)—अब उनसे मिलियेगा तो कह दीजिएगा कि उनके त्याग के विषय में मथुरा

वाली लड़की के पिता को कह दूँगा। परन्तु अब वहाँ उनके लिये आशा करने को स्थान नहीं रहा। उनको वहाँ का विचार छोड़ देना चाहिए।

(इस समय तीनों भोजन करना आरम्भ करते हैं। भोजन करते हुए बातचीत जारी रहती है।)

सुमति—पिता जी! मेरा अगला कार्यक्रम अगले मास की दस तारीख को सायं साढ़े सात बजे निश्चित हो गया है।

भट्टजी—तब तो ठीक है। सुशील जी! आप उस दिन शाम को हमें इसी होटल में मिलियेगा। तभी कविता प्रकाशन के विषय में बातचीत करेंगे। क्यों, आ सकिएगा या नहीं?

सुशील—अवश्य-अवश्य। मुझे भारी प्रसन्नता होगी।

भट्टजी—हाँ, मैंने आपको बताया था कि मेरे एक मित्र सोमदेव नैनीताल वासी हैं। कदाचित् वे आपके पिताजी हैं। आप उनको पत्र लिखें तो यह भी लिखिएगा कि आप मुझसे तथा सुमति से मिले थे। हमारी नमस्कार उनको लिख दीजिएगा।

सुशील—मैं उनको आज ही पत्र लिखूँगा।

भट्टजी—हमें एक बजे की गाड़ी पकड़नी है, इस कारण हमें आज जल्दी है।

(भोजन समाप्त होता है और सभी जाने के लिए तैयार हो जाते हैं।)

दृश्य चतुर्थ

(दिल्ली सिविल लाईन्स में एक कोठी। कमलापति अपनी पत्नी को आवाज़ देता हुआ एक कमरे में प्रवेश करता है।)

कमलापति—ओ भाग्यवान! देखो, यह किसका पत्र आया है।

(कमरे में मोहनी स्वीटर बुन रही है। वह स्वीटर और सलाइयों को एक ओर रख, हाथ बढ़ाकर पूछती है।)

मोहनी—किसका है ?

कमलापति—तुम्हारे जीजा राधाकृष्ण जी का। लिखते हैं कि अपनी लड़की देवकी के साथ कुछ दिन के लिए दिल्ली आ रहे हैं। इस कोठी में ही ठहरेंगे।

मोहनी—एक पत्र मुझ को भी आया है आपकी बहिन सुभद्रा का। लिखती हैं कि अपनी लड़की कीर्ति के साथ दिल्ली देखने के लिए आ रही हैं। वे भी हमारे यहाँ ही रहेंगी।

कमलापति—यह तो बहुत अच्छा रहेगा। सुभद्रा को दिल्ली आए एक युग बीत गया है।

मोहनी—कीर्ति तो अब सज्ञान हो गई होगी।

कमलापति—और देवकी ? मैं समझता हूँ कि पच्चीस वर्ष की तो हो ही गई होगी।

मोहनी—आजकल लड़कियों के विवाह की समस्या बहुत ही विकट हो रही है। कृष्णा भी तो चौदह वर्ष की हो रही है।

कमलापति—वह तो अभी बहुत छोटी है। देवकी अब क्या करती है ?

मोहनी—करना क्या है ? वह एम० ए० पास कर चुकी है। नौकरी करना चाहती नहीं। न ही आवश्कता है। विवाह हुआ नहीं। इस कारण एक काम करने लगी है। कविता लिखती है। दस कविताएं लिखती है, तब कहीं एक किसी पत्रिका में छप जाती है।

कमलापति—क्या व्यर्थ का सा जीवन है !

मोहनी—ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तान में लड़के कम हो गए हैं।

(कमलापति हंसता है !)

मोहनी—इसमें हंसने की क्या बात है ? वे दुर्गादास हैं न, जो बीमा कम्पनी में नौकर हैं। उनकी लड़की ने मैट्रिक पास किया तो

दुर्गादास उसके विवाह की चिन्ता करने लगे। योग्य वर न मिलने से लड़की को एफ० ए० तक पढ़ाया। तब भी वर न मिला, तो उसको बी० ए० कराया। फिर एम० ए० और अब वह लॉ कालेज में पढ़ती है।

कमलापति—वह वकील बन जाएगी, खाने कमाने लगेगी तो विवाह भी हो जाएगा।

मोहनी—तो लड़कियों को विवाह कराने के लिए कानून पढ़ना चाहिए?

कमलापति (हंसते हुए)—अच्छा भाग्यवान! मैं तो एक काम से जा रहा हूँ। तुम मेहमानों के ठहरने का प्रबन्ध करना।

(कमलापति चला जाता है। इस समय बाहर एक लड़की नौकर को डाँटती सुनाई देती है।

लड़की—ओ मोती के बच्चे! देख यह क्या कर दिया है।

मोहनी—कृष्णा, ओ कृष्णा!

(एक चौदह वर्ष की लड़की क्रोध से भरी हुई कमरे में प्रवेश करती है। उसके हाथ में सफेद कैनवस का एक जूता पकड़ा हुआ है।)

कृष्णा—मम्मी! देखो, यह मोती के बच्चे ने क्या कर दिया है।

मोहनी—कृष्णा! कुछ सभ्यता सीखो। बात करने का ढंग नहीं आता तुमको?

कृष्णा—मेरा जूता जो खराब कर दिया है। यह देखो, सब मिट्टी लगा दी है।

मोहनी—ठीक है। मिट्टी लगा दी है तो उसको कहो फिर पॉलिश कर दे। गाली देने से क्या बनेगा? देखो, तुम्हारी बूआ आ रही हैं और यदि तुम उनके सम्मुख भी इस प्रकार बोलती रहीं, तो वह तुमको गंवार समझेंगी।

कृष्णा—कौन बूआ हैं? मैं नहीं जानती।

मोहनी—जान जाओगी। बूआ की लड़की तुम्हारी बहिन कीर्ति भी आ रही है।

कृष्णा—वह क्यों आ रही है ?

मोहनी—तुम्हारी बहिन है, इस लिए।

कृष्णा—जब हम उसके घर नहीं जाते तो वह क्यों आ रही है ?

मोहनी—कीर्ति की माँ, तुम्हारे पिता जी की बहिन है।

कृष्णा—बहिन को भाई के घर आने में लज्जा नहीं लगती ?

मोहनी—नहीं, बहिन का भाई पर अधिकार होता है। वह आ रही है और तुमको उन्हें दिल्ली दिखानी होगी।

कृष्णा—मैं नहीं दिखाने जाऊंगी। मुझको फुरसत नहीं है।

मोहनी—फुरसत निकल आएगी। और देखो, देवकी भी आ रही है।

कृष्णा—सच ? तब तो बड़ा मज़ा रहेगा।

मोहनी—हाँ, वह भी तुम्हारे साथ घूमेगी।

कृष्णा—पर उसने तो दिल्ली देखी हुई है।

मोहनी—वह यहाँ कई दिन रहेगी और तुमको उसके साथ रहना होगा।

(इस समय कोठी के बाहर डियोढ़ी में एक टाँगा आकर खड़ा होता है। माँ बेटी बाहर निकल बरामदे में आ जाती हैं।)

मोहनी—कृष्णा ! ये तुम्हारी बूआ और बहिन कीर्ति है। देखो, सभ्यता का व्यवहार करना।

(इस समय सुभद्रा तांगे में से उतर बरामदे में आ हाथ जोड़ नमस्कार करती है।)

सुभद्रा—भाभी ! नमस्ते।

मोहनी—आओ सुभद्रा बहिन ! आज हम कैसे याद आ गए ? आओ, आओ।

(इतने में कीर्ति आ मोहनी के चरण स्पर्श करती है। मोहनी उसको

उठाकर पीठ पर हाथ फेर प्यार देती है।)

मोहनी—कृष्णा ! बहिन को पिछले अपने बगल वाले कमरे में ले जाओ। ओ मोती ! टांगे से सामान उतार कर कृष्णा के बगल वाले कमरे में पहुँचा दो।

(कृष्णा और कीर्ति कोठी के पिछवाड़े में एक कमरे में चली जाती हैं। मोहनी सुभद्रा को ड्रायंग रूम में ले जा कर बैठाती है।

मोहनी—सुनाओ बहिन ! कैसे आना हुआ है ?

सुभद्रा—भैया को मिले बारह वर्ष हो चुके हैं। जब इतने काल तक भैया के दर्शन नहीं हुए तो बहिन स्वयं दर्शन करने चली आई।

मोहनी—तुम ठीक कहती हो बहिन ! ये तो हैं ही ऐसे। दिल्ली से बाहर निकलते नहीं। तुमने ठीक ही किया है, जो आगई हो। ऐसे भाई के साथ ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए।

सुभद्रा—कहाँ गए हैं भैया ?

मोहनी—किसी काम से गए हैं। कह रहे थे तुम तो यहाँ कुछ दिन रहोगी ही। सो रात को मिल लेंगे।

सुभद्रा—कीर्ति गांव में रहती रहती उचाट हो गई थी और कितने ही दिनों से कह रही थी कि दिल्ली घूमने चलो। सो आ गए हैं। कीर्ति के पिता भी आते, परन्तु आजकल कटाई के दिन हैं। वर्ष भर का खर्चा फसल पर ही इकट्ठा किया जा सकता है। इसलिए वे आ नहीं सके।

दृष्य पंचम्

(कृष्णा का कमरा। कृष्णा और कीर्ति प्रवेश करती हैं। कीर्ति बैठती है। कृष्णा खड़े-खड़े उसको ध्यान से सिर से पैर तक देखकर कहती है।)

कृष्णा—तो तुम कीर्ति बहिन हो। मम्मी कहती थी कि तुम देहात में

रहती हो, परन्तु देखने में तो तुम गाँव की नहीं प्रतीत होतीं।

(कीर्ति हँसती है और कृष्णा का हाथ पकड़ अपने पास खींचती है।)

कीर्ति—परन्तु कृष्णा ! तुम तो मुझे देहात की लड़की दिखाई देती हो।

कृष्णा—तुमने मुझमें देहात की क्या बात देखी है ?

(दोनों हँसने लगती हैं।)

कीर्ति—और तुमने मुझमें शहर की कौन सी बात देखी है ?

कृष्णा (कुर्सी पर बैठते हुए)—तुम्हारे साफ सुथरे फैशनेबल कपड़े।

कीर्ति (हँसते हुए)—पर यह तो दर्ज़ी ने सिये हैं। इसमें मैं कहाँ से आ गई ? देखो, तुम देहात की लड़की दिखाई देती हो क्यों कि तुम सरल चित्त हो।

कृष्णा—वाह ! क्या नगर में रहने वाले सरल चित्त नहीं होते ?

कीर्ति—मैंने सुना ऐसा ही है। हमारे पड़ोस में एक हमारी चंचल मौसी हैं। उनका लड़का, दस वर्ष से दिल्ली में रहता है और वे कहती थीं कि नगरों के विषम वातावरण में रहते हुए वह भी विषम स्वभाव हो गया है।

कृष्णा—कौन है वह ?

कीर्ति—कोई है। तुम उसको नहीं जानतीं। उसकी माँ भी दिल्ली आई हुई है। वह लड़के को वापिस देहात में ले जाना चाहती है।

कृष्णा—और तुम तथा तुम्हारी माँ यहाँ क्या करने आई हो ?

कीर्ति—दिल्ली और दिल्ली वालों को देखने। यदि मौसी का कथन सत्य है तो नगरों की विषमता से बचने के लिये।

कृष्णा—तब तो तुमको दिल्ली दिखानी पड़ेगी और तुम्हारा भ्रम निवारण करना पड़ेगा। मेरी मौसिया बहिन देवकी भी आ रही है। वह दिल्ली को बहुत पसन्द करती है। वह भी मेरी सहायता करेगी।

दृश्य षष्ठम्

(नन्दलाल का मकान। नन्दलाल और उसकी पत्नी बैठे हैं।)

नन्दलाल—प्रिये!·····।

पत्नी—सीधी तरह बात करो जी! प्रिये, सुन्दरी, जीवन धन, यह मुझ को पसन्द नहीं।

नन्दलाल—क्षमा करो देवी जी! अब ऐसी भूल नहीं करूँगा। अप्रिये!·····।

पत्नी—फिर वही बात।

नन्दलाल—वह नहीं? अच्छा, कुरूपे!·····।

पत्नी—कुरूप तुम, तुम्हारी माँ। मुझको खबरदार यह कहा।

नन्दलाल—परन्तु तुमने ही तो कहा था कि प्रिय, सुन्दरी आदि विशेषण तुमको पसन्द नहीं। इसी कारण मैंने इसके विपरीत कहा है।

पत्नी—नहीं मेरे पति महोदय! मुझे मेरे नाम से बुलाओ। मुझे यह अच्छा-बुरा कोई विशेषण पसन्द नहीं।

नन्दलाल—अच्छा रानी जी!·····

पत्नी—फिर वही बात।

नन्दलाल—क्षमा करो पुष्पा! बात भी करने दो। सुनो, मेरे मित्र की माँ आई हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम उससे चलकर मिलो।

पुष्पा—मैं क्यों मिलने जाऊँ? वह मुझको क्यों न मिलने आए?

नन्दलाल—मेरी भोली बीवी! वह मेरे मित्र की माँ है। आयु में तुमसे बड़ी है और दिल्ली में मेहमान है।

पुष्पा—और मैं कोई दिल्ली वाली हूँ?

(नन्दलाल खीज उठता है। फिर कुछ विचार कर कहता है।)

नन्दलाल—

मुक्के से मैं पत्थर को तोड़ूँ इक क्षण में

करूँ सितारों से बातें भी मैं गगन में
मुश्किल से मुश्किल बातों में भी जब उलझा
ऊपर को चढ़ने में भी था जब में जुलझा
तब भी थी न हिम्मत हारी रहा मैं सुलझा
हारा पर बीवी के हर दम रूठन में॥
मुक्के से मैं.....।
जब दिन को कहे कि है यह रात अन्धेरी
करती है हरदम बेसमझी निपट धनेरी
गाने की भी स्वर उसने है उलटी छेड़ी
हार गया हूँ बीवी से बातों के रण में॥
मुक्के से मैं.....।

पुष्पा—तो हारे हो ? मानते हो कि हार गए ?

नन्दलाल—हाँ श्रीमती जी ! बिल्कुल हार गया हूँ।

पुष्पा—लगाओ कान को हाथ।

(नन्दलाल अपने चारों ओर देखता है। कमरे में दोनों को अकेला देख कानों को हाथ लगाता है और कहता है।)

नन्दलाल—हाँ मेरी अच्छी बीवी ! मैं हारा। बताओ अब, चलोगी न उससे मिलने ?

पुष्पा—कल प्रातःकाल चलूँगी और कल साँयकाल उसको भोजन का निमन्त्रण दे आऊँगी।

नन्दलाल—तो उसके साथ उसके लड़के अर्थात मेरे मित्र को भी निमन्त्रण देना पड़ेगा।

पुष्पा—यह ज़रूरी है क्या ?

नन्दलाल—हाँ; नहीं तो उसकी माँ समझेगी कि किस गंवार की बेटी हो तुम ?

पुष्पा—फिर वही बात। तुम.....।

नन्दलाल—नहीं, नहीं; भूल गया श्रीमती जी ! जैसा मन आये करना। परन्तु वह अकेली यहाँ आना पसन्द न करे शायद।

पुष्पा—तो न करे। मैं क्या परवाह करती हूँ !

नन्दलाल—पर वे समझेंगी कि दिल्ली वालों को कौड़ी की भी अक्ल नहीं।

पुष्पा—मैं दिल्ली वालों की बदनामी की चिन्ता क्यों करूँ ?

(नन्दलाल परेशान दिखाई देता है। इस समय बाहर से आवाज़ आती है—नन्दलाल भैया ! भैया नन्दलाल !)

नन्दलाल—अरे ! यह तो प्रभाकर की माँ की आवाज़ है।

पुष्पा—वह आज यहाँ क्यों आ गई है ? मत बुलाओ उसको भीतर। मैं कान ऐंठ कर उसे बाहर निकाल दूँगी।

(नन्दलाल बाहर जाता है और अपने साथ प्रभाकर तथा उसकी माँ को लिये हुए भीतर चला आता है।)

नन्दलाल—लो भाग्यवान ! मौसी स्वयं ही तुमसे मिलने चली आई हैं।

(नन्दलाल की पत्नी उठकर चंचल का स्वागत करती है। उसको आदर से बैठाती है और पश्चात् घूर कर प्रभाकर की ओर देखती है। नन्दलाल बात बदलने के लिये कहता है।)

नन्दलाल—प्रभाकर दादा ! बैठो न। हम अभी तुम्हारी ओर जाकर मौसी को निमन्त्रण देने का विचार कर ही रहे थे। मौसी अपने आप ही आ गई हैं। इस कृपा का तो मैं अनुमान भी नहीं लगा सकता था।

चंचल—देखो बेटा ! वह माँ ही क्या हुई, जो अपने बच्चों को मिलने के लिए रस्मों रिवाज की परवाह करती फिरे ? तुमने मुझको कल माँ कहा, तो मैं तुमको क्या अपना न समझूँ ? (नन्दलाल की पत्नी के सिर पर हाथ फेरते हुए) बेटा ! देखो मैं तुम्हारे लिए क्या लाई हूँ ?

(इतना कह चंचल प्रभाकर के हाथ में पकड़ी हुई गठरी खोलकर दिखाती है और उसमें से हाथ की बुनी हुई एक सुन्दर साड़ी तथा जम्पर के लिये कपड़े का टुकड़ा निकाल पुष्पा की झोली में रखते हुए कहती है।)

चंचल—बेटी ! सौभाग्यवती हो। पुत्र-पौत्रों से अलंकृत, धन-धान्य से भरपूर घर की स्वामिन बनो। परमात्मा तुम दोनों को सुख तथा शान्ति प्रदान करे।

(पश्चात् चंचल नन्दलाल को संबोधन कर कहती है।)

चंचल—बेटा नन्द ! मैं तुम्हारे घर में निमंत्रण से नहीं आई हूँ। भला अपने घर आने के लिये किसी को निमंत्रण की प्रतीक्षा करनी चाहिये ? देखो बहू ! मुझे भूख लग रही है। घर में क्या रखा है खिलाने को ? लाओ तो।

दृश्य सप्तम्

(प्रभाकर का कमरा। चंचल कहीं जाने को तैयार खड़ी है और प्रभाकर मेज़ के सामने कुर्सी पर बैठा कुछ लिख रहा है। माँ उसका ध्यान आकर्षित कर कहती है।)

चंचल—प्रभाकर ! मैं आज कुतुब की लाट देखने जा रही हूँ।

प्रभाकर—कैसे जाओगी माँ ?

चंचल—सिंधिया हाऊस से सत्रह नम्बर की बस मिल जायेगी।

प्रभाकर—पर माँ ! अकेली जाने में क्या मज़ा आयेगा ?

चंचल—तो क्या करूँ ? भगवान ने अकेले जो रखा है। तुम्हारी बहू होती तो उसको साथ ले जाती।

प्रभाकर—बहू नहीं आती तो क्या करूँ ? जिसको पसन्द किया था, वह आती नहीं और जिसको तुम पसन्द कर आई हो, उसको मैं नहीं

चाहता।

चंचल—तुम जब चाँद के पीछे भागने लग जाओ तो क्या किया जाये ?

प्रभाकर—पर माँ ! मैं कीर्ति से विवाह नहीं करूँगा।

चंचल—क्यों ?

प्रभाकर—मेरे मन में उसका चित्र कुछ अच्छा नहीं है। जब मैं उसके विषय में विचार करता हूँ तो एक मिट्टी से लथपथ, बिखरे बालों वाली और मैले फटे पुराने कपड़े पहिने अपने साथ लड़के-लड़कियों से खेलती हुई, लड़ने वाली लड़की का चित्र सामने आ जाता है।

चंचल—और मैं जब तुम्हारे बचपन का ध्यान करती हूँ तो मेरे सामने एक धोती कुर्ता पहिने और कभी नंगे, बहते नाक वाला, सुरक-सुरक करता हुआ शर्माकल और दब्बू, एक कोने में बैठा रोता हुआ बालक घूमने लगता है। पर अब तो तुम वैसे नहीं हो। कीर्ति भला नहीं बदली होगी क्या ?

प्रभाकर—कैसे पता चले ? उसका कोई फोटो साथ ले आतीं।

चंचल—मैं तुमको साथ ले चलने के लिये आई हूँ, जिससे असल को देख सको। फोटो से तो धोखा भी हो सकता है।

प्रभाकर—पर मां ! मुझे फुरसत कहाँ है ? मेरे पास तो अगले पन्द्रह दिन का आर्डर आया हुआ है। जब यह काम समाप्त हो जायेगा, तब ही चल सकूँगा।

चंचल—तो लेख वहाँ चल कर लिख लेना।

प्रभाकर—सब पुस्तकें वहाँ कैसे ले चलूँ ? अगर तुम बहुत कहती हो तो दो सप्ताह पश्चात् एक दिन की छुट्टी कर सकूँगा। तुम्हारी कीर्ति को देख अगले दिन लौट आऊँगा। तब तो नहीं कहोगी कि बिना देखे ही इन्कार कर दिया है।

(बाहर घंटी बजती है।)

प्रभाकर—माँ ! कोई आया है।

चंचल—सुशील अथवा नन्दु होगा। बुला लो भीतर।

(प्रभाकर बाहर जाता है और सुदर्शन को साथ लेकर भीतर आ-जाता है।)

प्रभाकर—सुदर्शन जी! ये मेरी माँ हैं।

सुदर्शन—नमस्कार माँ जी! बहुत अच्छा हुआ, जो आपके दर्शन हो गए।

चंचल—आइए बैठिए। आपके विषय में प्रभाकर ने बताया था। बताइए कैसे आना हुआ है?

सुदर्शन—माँ जी! प्रभाकर जी को अमृतसर बुलाया था। जब वह वहाँ नहीं आया तो स्वयं मुझको यहाँ आना पड़ गया है।

प्रभाकर—परन्तु करुणा का विचार भी तो स्थिर नहीं। उसने ही तो लिखा था कि भैया उसका विवाह मुझसे ठीक नहीं समझते।

सुदर्शन—जब तुमने लिखा कि—

नौका मेरी बेबस है न जाने किधर को चलती है
कभी पूरब को कभी पश्चिम को फिर उल्टी दिशा पकड़ती है।
इस डावाँडोल अवस्था में सबको मैं यह कहता हूँ
चल पड़ा सफर पर मैं ऐसे अब पथ अनन्त पर रहता हूँ॥

तो मैंने कौन नई बात की है? याद है कैसे बात हुई थी? इसी कमरे में बैठे थे। तुम करुणा की कविता पढ़कर मुग्ध हो रहे थे। मैंने पूछा कैसी लगी? तुम यह न जानते हुए कि करुणा मेरी बहिन है, उसकी प्रशंसा करने लगे थे और पश्चात् उसको अपनी पत्नी बनाने के योग्य माना था। जब मैंने बताया कि वह मेरी बहिन है तो तुमने अपनी पुस्तक और लेख दिये थे।

मैंने अमृतसर जाकर तुम्हारी प्रशंसा कर तुमको उसके मन्दिर का देवता बना दिया और तुमने उक्त कविता लिखकर अति निर्दयता का परिचय दिया।

प्रभाकर—यह सब ठीक है दादा ! परन्तु·····।

सुदर्शन (बात बीच में काट कर)—पीछे तुम दोनों ने वह गड़बड़ गुटाला किया कि मुझको स्वयं यहाँ आना पड़ा है। करुणा अपने मन को नहीं जानती। तुम्हारी प्रत्येक चिट्ठी के पश्चात् वह स्वयं कभी पूर्व और कभी पश्चिमाभिमुख हो जाती है और जब तुम लिखते हो—

है करुणा वह मधुर भावना जो जिसके हिय में रहती है।
कर देती है वह कृत्य कृत्य बन स्वर्ण नसों में वह बहती है॥

तो वह मोर की भाँति मुग्ध हो नाचने लगती है।

प्रभाकर—यह तो एक साधारण सच्चाई लिखी थी।

सुदर्शन—प्रभाकर ! यह मैं कुछ नहीं जानता। वह कहती है—

मन ऊसर पर तो करुणा की वर्षा निष्फल हो चली गई।
अरे कवि महाशय ! अब तक तो बेचारी करुणा छली गई॥

प्रभाकर—और तुम क्या कहते हो ?

सुदर्शन—मैं तो यह कहने आया हूँ—

मन ऊसर में खाद डालदे और चला दे हल विचार का।
बरस पड़े तभी करुणा फिर बन आयोजन मन सुधार का॥

(प्रभाकर चुप हो गंभीर बन बैठ जाता है। सुदर्शन प्रभाकर की माँ को संबोधन कर कहता है।)

सुदर्शन—माँ जी ! अब तो आप भी बैठी हैं। सुनिए। मैं अमृतसर का रहने वाला हूँ। मेरे पिता जी मेरी बहिन के नाम पचास सहस्र रुपया छोड़ गए हैं। इसके अतिरिक्त मैं भी तो कुछ दूँगा ही। करुणा स्वयं एक कॉलेज में पढ़ाती है और इस समय साढ़े चार सौ रुपया वेतन पाती है। अब आप उसको अपनी पतोहु बनाना स्वीकार करलें, तो प्रभाकर मान जायेगा।

चंचल—मैं करुणा को बधाई देती हूँ कि उसके पिता ने उसको इतना कुछ दिया है और साथ ही इतना पढ़ाया है। पर बेटा ! सोने के पेड़ मिट्टी की भूमि में नहीं जमते। प्रभाकर तो केसर गंज का रहने वाला है। उस भूमि में तो ज्वार बाजरा ही बोया जा सकता है, सोना नहीं।

सुदर्शन—माता जी ! उस भूमि को अमृतसर ले जायेंगे। वहाँ की जल-वायु से वह सोना उगलने लगेगी ? वहाँ जाकर इसमें भी सोने के पेड़ लग जायेंगे।

चंचल—ठीक है; परन्तु जिस व्यक्ति को मका तथा बाजरा खाने का अभ्यास हो, वह सोना फाँक कर जी नहीं सकेगा। क्या पढ़ाती है तुम्हारी बहिन ?

सुदर्शन—राजनीति।

चंचल—राम-राम ! कैसी बातें करते हो बेटा ? उसका विवाह एक लेखक से हो गया तो दिन रात बहस हुआ करेगी।

सुदर्शन—ऐसा क्यों होगा माता जी ?

चंचल—इस लिये कि लेखक की दुनियाँ में कोई भी पार्लियामेंट हस्तक्षेप नहीं कर सकती और इन पार्लियामेंट के विधानों की ज्ञाता पत्नी लेखक के मस्तिष्क में काँटा बन चुभती रहेगी।

सुदर्शन—आप चिन्ता न करें माता जी ! एक बार विवाह होने दीजिए। फिर देखिए, कैसे ये महाशय उसको अपने अनुकूल कर लेते हैं।

चंचल—यही तो कह रही हूँ कि प्रभाकर राजनीति की ज्ञाता बीवी पाकर लेखक नहीं रह जायेगा। वह क्या बन जाएगा, भगवान ही जानता है।

सुदर्शन (हँस कर)—वह प्राईम मिनिस्टर बन जायेगा।

चंचल—शिव ! शिव !! क्या कहते हो बेटा ? तुम चाहते हो कि तुम्हारा मित्र दिन रात व्याख्यान दिया करे ? संसद में प्रत्येक ज्ञात-

अज्ञात विषय पर वक्तव्य देता फिरे और दुनियाँ भर की चिन्ताओं को सिर पर लादा फिरे ? मैं उसके साथ ऐसी निर्दयता का व्यवहार नहीं कर सकती।

सुदर्शन (इस विवेचना पर हँसते हुए)—प्रभाकर से आप क्या आशा रखती हैं ?

चंचल—मैं चाहती हूँ कि प्रभाकर लेखक बना रहे। उसकी आत्मा स्वतंत्र और निर्भीक बनी रहे। वह सत्य हृदय से बड़े से बड़े व्यक्ति को उसके गुण दोष बता सके। वह सदा संसार को उन्नत करने के लिये यत्नशील रहे और जब दस घंटे काम कर वह घर आये तो उसकी सेवा के लिए एक कुशल गृहणी मुस्कराती हुई तथा प्रेम और श्रद्धा से उसकी ओर देखती हुई उपस्थित मिले। उसको कपड़े बदलने में सहायता दे। उसके हाथ पाँव धुलवाए और उचित तथा स्वादिष्ट एवं पौष्टिक भोजन खाने को दे। जब पति की दिन भर के काम से हुई थकावट दूर हो जाये तो फिर दोनों प्रेमपूर्वक घर की समस्याओं पर विचार करें। मैं चाहती हूँ कि मेरा प्रभाकर स्वस्थ, सुखी और सम्पन्न जीवन व्यतीत करता हुआ सौ वर्ष तक जिए और उसकी पत्नी अन्त काल तक उसकी सेवा-शुश्रूषा सुख पूर्वक करती रहे।

बताओ ! तुम्हारी बहन प्रोफेसरी करेगी, रूस और अमेरिका के झगड़ों पर विचार करेगी अथवा अपने पति की सुख सुविधा पर ध्यान करेगी ? क्या वह स्वस्थ मन और शरीर वाले पुत्र पुत्रियों को जन्म दे सकेगी ?

(सुदर्शन प्रभाकर की माँ का मुख देखता रह जाता है।)

प्रभाकर—पर माँ ! यह सब कुछ तो एक नौकर भी कर सकता है। मुख्य बात नौकर रखने की शक्ति है। पत्नी को नौकर कौन बनाकर रखेगा ?

चंचल—यही तो मैं तुमको समझाने आई हूँ । विवाह कोई लिमिटेड कम्पनी बनाने के लिए नहीं किया जाता । यह तो परिवार बनाने में एक उपाय है । परिवार का प्रत्येक प्रकार का काम पत्नी के अधीन और उसका उत्तरदायित्व है । नौकर से करवाए अथवा स्वयं करे, यह एक भिन्न बात है । प्रत्येक अवस्था में यह सब कुछ उसकी जिम्मेदारी है ।

प्रभाकर—और पुरुष की क्या जिम्मेदारी है ?

चंचल—देखो बेटा ! मेरे दोनों हाथों की ओर देखो ।

(चंचल दोनों हाथों को फैला देती है और प्रभाकर तथा सुदर्शन दोनों उनको देखते हैं ।)

चंचल—एक का अंगूँठा एक ओर है और दूसरे का दूसरी ओर । यदि दोनों हाथों के अंगूँठे एक ही ओर हों और छोटी उंगली भी एक ओर हो तो दोनों हाथ, मिल कर भी कुछ नहीं कर सकते । दोनों अंजुली तक नहीं बना सकते; न ही दोनों मिलकर कुछ पकड़ सकते हैं । इसलिये शरीर बनाने वाले ने दाहिना हाथ बाएँ हाथ से उलटा बनाया है ।

मैं कोई अनहोनी बात नहीं कहती, जब यह कहती हूँ कि पति और पत्नी के काम एक दूसरे से भिन्न, परन्तु एक दूसरे के पूरक होने चाहिएँ । बर्मा और चीन में स्त्रियाँ घर से बाहर का काम करती तो हैं, परन्तु पुरुष वहाँ घर का काम करते हैं ।

यदि तो प्रभाकर की पत्नी ने कॉलेज में राजनीति पढ़ानी है तो प्रभाकर को घर के नौकरों की देखभाल, बच्चों के खेलने का काम और उनकी रोटी तथा वस्त्रों का प्रबन्ध देखना होगा । नहीं तो परिवार की गाड़ी कैसे चलेगी ?

(सुदर्शन गम्भीर विचार में मग्न हो जाता है । प्रभाकर कहता है ।)

प्रभाकर—न माँ ! मुझसे बच्चे नहीं खिलाये जाएँगे । न ही मैं आलू, दाल

भाजी खरीद कर ला सकता हूँ, या बना सकता हूँ।

चंचल—इसी लिये तो यह सब कुछ करने के लिये तुम्हारे लिये उपयुक्त बीवी लाकर देना चाहती हूँ।

(सुदर्शन उठ पड़ता है और कहता है।)

सुदर्शन—अच्छा माँ जी! नमस्ते। मैंने आज इतना कुछ सुना है कि इस पर एकान्त में बैठ कर मनन करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी है। अब मुझको छुट्टी दीजिये और यदि कुछ कहने को हुआ तो फिर दर्शन के लिये उपस्थित हो जाऊँगा।

(चंचल भी उठकर नमस्कार करती है और जाने के लिये तैयार हो जाती है।)

चंचल—प्रभाकर! मैं कुतुब की लाट देखने जा रही हूँ।

(प्रभाकर अत्यन्त परेशान सा सुदर्शन के साथ ही मकान के बाहर निकल आता है। वह कमरे को ताला लगाता हुआ कहता है।)

प्रभाकर—सुदर्शन जी! मैं भी कुछ विचार करना चाहता हूँ। चलो न, दोनों जन्तर-मन्तर को चलें। वहाँ खुली हवा में बैठ कर भली-भाँति विचार विनिमय कर सकेंगे।

दृश्य अष्टम्

(जन्तर मन्तर की लॉन। सुदर्शन और प्रभाकर टहल रहे हैं। इस समय सुशील पीछे से पुकारता है।)

सुशील—प्रभाकर दादा! आज इधर कहाँ?

(प्रभाकर सुशील को देख प्रसन्नता से खिल उठता है।)

प्रभाकर—आओ सुशील! आओ, तुम्हारा अपने एक परम हितैषी से परिचय कराऊँ।

(सुशील समीप आता है तो प्रभाकर दोनों का परस्पर परिचय कराता

है। सुशील सुदर्शन से हाथ मिलाता हुआ कहता है।)

सुशील—तो आप हैं श्री सुदर्शन जी, करुणा देवी के भाई।

सुदर्शन—हाँ; आया था प्रभाकर को खरीदने और स्वयं बिक कर जा रहा हूँ।

(सुशील विस्मय में सुदर्शन के मुख पर देखता है।)

सुदर्शन—मैं प्रभाकर जी को करुणा से विवाह करने पर साठ-सत्तर हज़ार मिलने का प्रलोभन देने आया था, परन्तु मिल गई प्रभाकर जी की माँ और उन्होंने दो ही बातें कर, मुझको अपना शिष्य बना लिया है। कितना पढ़ी हैं वे ? प्रभाकर !

प्रभाकर—चौथी श्रेणी तक। जब मैं चार वर्ष का था, पिता जी का देहान्त हो गया था। पश्चात् माँ ने मुझको पढ़ाया-लिखाया। एम० ए० पास कराया और फिर जब तक मैं कमा कर अपना निर्वाह नहीं करने लगा, तब तक मेरा खर्चा वे भेजती रही हैं।

सुदर्शन—सुशील जी ! आज इनकी चौथी श्रेणी तक पढ़ी माँ ने मुझ एम० ए० इकौनोमिक्स और प्रधान, चैम्बर औफ कॉमर्स को एक ऐसी शिक्षा दी है कि मैं अपनी पढ़ाई पर लज्जा अनुभव करने लगा हूँ। मैंने करुणा से पूछा था कि क्या वह विवाह के पश्चात् नौकरी छोड़ देगी, तो उसने कहा था कि इसकी आवश्यकता नहीं। आज प्रभाकर जी की माँ ने बताया है कि वह नौकरी कर सकती है, परन्तु उस अवस्था में परिवार की पूर्णता के लिए प्रभाकर जी को 'पिरैम्बुलेटर' ले बच्चों को सैर कराने जाना होगा। दाल-भाजी का हिसाब रखना होगा इत्यादि-इत्यादि। और प्रभाकर जी यह करने के लिए तैयार नहीं हैं।

सुशील—यह बात तो माँ जी ने ठीक ही कही है। मैं अपना व्यवसाय देखता हूँ और घर के नौकर पर देख-भाल रखने वाला कोई न होने के कारण, मेरी रोटी का खर्च डेढ़-दो सौ रुपया मासिक तक हो जाता है।

(इस पर सुदर्शन हँसता है और कहता है।)

सुदर्शन—इसका अर्थ यह हुआ कि दो सौ रुपये महीने में से लगभग सौ-सवासौ बचाने के लिये किसी घर का काम काज समेटने वाली लड़की से विवाह कर लेना चाहिए।

सुशील—सुदर्शन जी! यह केवल रुपये की बात नहीं है। खाने की श्रेष्ठता का भी तो प्रश्न है। जितनी मिन्नत-खुशामद मैं अपने रसोइए की करता हूँ, उतनी मैं अपनी पत्नी की करूँ तो वह मेरी जीवन भर की दासी बन जाए। यहाँ तो नौकर मिन्नत कराना अपना अधिकार समझता है। जब कभी रूठ जाता है तो न केवल मैं होटल में जाता हूँ, प्रत्युत उसको भी ले जाना पड़ता है और वह मुझसे चार गुणा अधिक खाता है।

(सब हंस पड़ते हैं।)

प्रभाकर—सुशील भैया! तुमको तो तुरन्त विवाह करा लेना चाहिए। मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान टाईम्स में विज्ञापन दे दें कि एक व्यापारी के लिए घर सम्भालने वाली लड़की की आवश्यकता है। परन्तु यह तो बताओ, उस मथुरा वाली लड़की का क्या हुआ, जिससे तुम्हारी सगाई हुई थी?

(सुदर्शन और प्रभाकर हंसते हैं। सुशील गंभीर मुख किए उनकी ओर देखता है। जब वे हंस चुकते हैं, तो वह कहता है।)

सुशील—प्रभाकर दादा! यही तो तुमको बताने आया हूँ। तुम्हारे घर पर गया था। वहाँ से पता चला कि तुम इधर को आए हो। इस पार्क में आते देख यहाँ आ पहुँचा हूँ। सुनो, पिता जी का पत्र आया है। (जेब में से पत्र निकाल कर) वे लिखते हैं,

प्रिय सुशील, चिरंजीव रहो।

तुम्हारा पत्र मिला। यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम मेरे बाल्यकाल के मित्र विश्वम्भर भट्ट और उनकी लड़की सुमति

से मिले थे। तुमको लड़की की कविता तथा गायन पसन्द आया है, इससे और भी प्रसन्नता हुई है। तुमने लिखा है कि अगले मास की दस तारीख को सायं साढ़े सात बजे उसका गाना फिर होगा। यह हमने नोट कर लिया है और पूर्ण परिवार भर उस दिन उसका गाना सुनेगा।

पूर्व इसके कि तुम मेरे मित्र और उनकी लड़की से मिलो, तुमको यह जान लेना उचित होगा कि भट्टजी की लड़की सुमति से ही तुम्हारी सगाई हुई है।

ऐसा प्रतीत होता है कि लड़की के संकोच का ध्यान रख, भट्टजी ने अपना परिचय तुमको नहीं दिया। जब उन्होंने कहा है कि तुम मुझको उनसे भेंट के विषय में लिखो तो वे चाहते हैं कि यह रहस्य मैं ही तुम्हें बताऊँ।

आशा करता हूँ कि अगली बार जब तुम उन से मिलोगे, तो उनके चरण स्पर्श करना नहीं भूलोगे।

मैं विवाह का शीघ्रातिशीघ्र प्रबन्ध कर रहा हूँ।

(पत्र लपेट अपनी जेब में रख, सुशील लाल पीले होते हुए प्रभाकर के मुख पर देख कर कहता है।)

सुशील—प्रभाकर दादा! अब तुमको करुणा से विवाह मान जाना चाहिए।

सुदर्शन—मैं तो इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यह विवाह नहीं होना चाहिए। यही तो प्रभाकर जी की माता जी कहती हैं और मैं उनकी सम्मति उचित समझता हूँ।

प्रभाकर! मैं करुणा के लिए किसी ऐसे गरीब लड़के की खोज करूँगा, जो 'डोमेस्टिक सायंस' में कमसे कम बी० ए० हो। अन्यथा करुणा को कॉलेज छोड़ 'डोमेस्टिक सायंस' स्टडी करनी चाहिए। तभी तो उसका विवाह हो सकता है।

सुशील (गंभीर हो कर)—तो दादा ! यहाँ से भी पत्ता कटा ?

(दोनों मित्रों को शोकग्रस्त तथा गंभीर देख सुदर्शन हाथ जोड़कर नमस्ते कहता है।)

सुदर्शन—अच्छा प्रभाकर जी ! मैं दोपहर की गाड़ी से अमृतसर लौट जाना चाहता हूँ। शेष समाचार अमृतसर जाकर पत्र द्वारा सूचित करूंगा।

(सुदर्शन चला जाता है और दोनों मित्र उसको जाते देखते रह जाते हैं। जब सुदर्शन 'जन्तर मन्तर' से बाहर निकल जाता है तो प्रभाकर कहता है।)

प्रभाकर—सुशील ! मुझको करुणा से संबन्ध टूटने पर इतना शोक नहीं हुआ, जितना तुम्हारा सुमति से संबन्ध बनने पर। तुम्हारे पिता जी के पत्र से तो यह पता चलता है कि जिस दिन तुम सुमति से मिलने गए थे, उस दिन तुम्हारी सगाई हो चुकी थी। यही कारण था कि सुमति ने मुझको अपने दिल्ली आने की सूचना नहीं भेजी। उसको मेरे सामने आने में लज्जा लगी होगी।

सुशील—आखिर तो उसको तुमसे मिलना ही पड़ेगा। अब तुम उसके जेठ जो बन जाओगे। पर मेरा कहा मानो। पूर्व इसके कि वह तुमसे मिलने आए, तुम भी अपने विवाह का प्रबन्ध कर लो। अन्यथा तुम्हारी और तुम्हारी माता जी की बड़ी हेठी होगी।

प्रभाकर—मैं समझता हूँ कि देवकी से बात पक्की हो जाएगी। वह अपने पिता के साथ शीघ्र ही दिल्ली आने वाली है। उसने यह लिखा था। मैं उसका अर्थ यह समझा हूँ कि वह मेरे साथ विवाह की बातचीत करने आ रही है।

सुशील—पर तुम्हारी माता जी तुम्हारा विवाह कीर्ति से करना चाहती हैं न ?

प्रभाकर—मेरी पसन्द वह नहीं है।

दृश्य नवम्

(कमलापति की कोठी। कृष्णा के कमरे में देवकी और कीर्ति बैठी बातें कर रही हैं।

कीर्ति—देवकी बहिन! तुम्हारे कहने का अभिप्राय तो यह हुआ कि तुम्हारे पिता जी तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध करने यहाँ आए हैं।

देवकी (मुस्करा कर)—नहीं; मेरे कहने का अर्थ यह है कि मैं अपना विवाह करने के लिए अपने पिता जी को साथ लेकर यहाँ आई हूँ।

कीर्ति—दोनों बातों का एक ही अर्थ नहीं क्या?

देवकी—नहीं; बहुत अन्तर है। अन्तर यह है कि जिन से विवाह का प्रबन्ध हो रहा है, वह मेरी पसन्द है। पिता जी ने तो उन को देखा भी नहीं।

कीर्ति—तो यह बात है? अब समझ गई हूँ। कौन है वह? कहाँ देखा था तुमने उसको?

देवकी—मैं और मेरी एक सखि उसको देखने अमृतसर से चल यहाँ आई थीं। उस समय उसके विवाह की बात मेरी सखि करुणा से चल रही थी। परन्तु उसने जब मुझको देखा तो करुणा का विचार छोड़ दिया और मुझसे पत्र व्यवहार होने लगा। वास्तव में बात तो सारी पत्रों द्वारा ही हो चुकी है, परन्तु पिता जी अब अन्तिम निर्णय करने के लिए आए हैं।

उन्होंने अपने अन्तिम पत्र में लिखा था, (देवकी अपने बैग में से एक पत्र निकाल कर पढ़ कर सुनाती है) मैं समझता हूँ कि आप अपने पिता से स्वीकृति ले लें। कहीं वे भी करुणा के भाई की भाँति मुझको अस्वीकार न कर दें और आप करुणा की भाँति अपने पिता की आज्ञाकारिणी पुत्री होने के नाते लिख भेजें कि आप विवश हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं तो·····

चिर चिन्तन से बनी कामना मन की मेरी ।
हियपट पर पनप रही बन भव्य मूर्ति तेरी ॥
नित्य सगारे गूँथूँ मैं भावों की माला
उसमें हो सद्भावना एक पुष्प निराला ।
रहे हाथ में हाथ सदा ही निभे सहारा
जीवन भर का बने चिरंतन साथ हमारा ॥

कीर्ति—कविता तो सुन्दर बनाई है। कौन हैं वे ?

देवकी—एक विख्यात कवि हैं । नाम है प्रभाकर मिश्र । बहुत ही भले दिखाई देते हैं ।

(कीर्ति आश्चर्य-चकित हो देखती रह जाती है। पश्चात् अपने आपको संभाल कर कहती है ।)

कीर्ति—नाम तो सुना है । बहुत प्रसिद्ध कवि हैं वे । कब जाओगी मिलने उनसे ? मुझ को भी साथ लेते जाना।

देवकी—नहीं जी । मैं वही कहानी दुहराना नहीं चाहती, जो मेरी और करुणा की हुई है । क्या जाने वे फिर पथ भटक जाएं । उनके अपने शब्दों में—

पथिक चला था चन्द्रलोक को चढ़ मन चंचल की गाड़ी में
वह भटक गया पहुँचा था जा, थी ऊषा जहाँ सवारी में ।

बहुत कठिनाई से कवि को ठीक पथ पर लाई हूँ और अब तुमको साथ ले चलूँ तो क्या जाने क्या हो जाए ?

कीर्ति—पर देवकी बहिन ! तुम मुझ से अधिक सुन्दर, अधिक पढ़ी लिखी हो । कविता करना, लेख लिखना जानती हो। फिर मुझ देहाती गंवार लड़की से डरती हो ?

देवकी—पुरुषों की बात तुम नहीं जानतीं कीर्ति ! जब तक इनको प्रेम में बांध कर न रखा जाए, ये बेलगाम घोड़े की भांति भागते फिरते हैं ।

कीर्ति—क्या लाभ होगा ऐसे घोड़े को बांधने का ?

देवकी—तुम्हारा मन अभी तक किसी पर रीझा नहीं न । जब रीझ जाएगा तो फिर बताना ।

कीर्ति (एक दीर्घ श्वास लेकर)—सच बताऊं देवकी बहिन ! रीझा तो हुआ है । पर मैंने उसको कई वर्षों से नहीं देखा । वह मेरा बचपन का साथी है ।

देवकी—कौन है वह ?

कीर्ति—जब मिलेगा, तो तुमको दिखाऊंगी । मैं तो समझती हूँ कि यदि वह मुझसे भटक कर तुमको पसन्द करले तो करले। मुझको इस बात का भय नहीं ।

देवकी—तुम बच्चों की सी बातें करती हो । वास्तव में तुम्हारा प्रेम उसके साथ बहुत घना नहीं । हो भी कैसे सकता है ? कितने वर्ष हो गए हैं तुमको उसको देखे हुए ?

कीर्ति—ग्यारह वर्ष तो हो ही चुके हैं । मैं तब छः वर्ष की थी। वे बारह-तेरह के थे ।

देवकी—तभी ! कब मिलने जाओगी उससे ?

कीर्ति—जब माँ ले जाएंगी ।

(देवकी हंसती है । इस समय कृष्णा कमरे में प्रवेश करती है और बैठते हुए कहती है ।)

कृष्णा—देवकी बहिन ! लो काम बन गया है । पिता जी के एक मित्र हैं सुशील कुमार । उन्होंने हम सब को अपने घर पर दावत दी है और उस दावत में उनके कुछ मित्र भी आमंत्रित होंगे । इन मित्रों में एक प्रभाकर जी भी होंगे ।

देवकी—कैसे जानती हो यह ?

कृष्णा—पिता जी मौसा जी से यह सब प्रबन्ध बता रहे थे । दस तारीख की रात आठ बजे यह भोज होगा । सुशील जी के स्वसुर और

मंगेतर भी उसमें आएँगे।

देवकी—तो इसका अर्थ यह हुआ कि मौसा जी को भी मेरी बड़ी चिन्ता है।

कृष्णा—मम्मी तुमको बुला रही हैं। इस अवसर के लिये वे तुमसे राय करना चाहती हैं।

(कृष्णा और देवकी कमरे से बाहर निकल जाती हैं। सुभद्रा कमरे में प्रवेश करती है। कीर्ति अपने सिर को दोनों हाथों में लिये हुए बैठी हुई है।)

सुभद्रा—क्यों कीर्ति ! क्या हुआ है ?

कीर्ति—सिर में चक्कर आने लगे हैं, माँ !

सुभद्रा—चक्कर ? मैं तो तुमको एक और बात बताने आई थी और तुम·····।

(कीर्ति सिर पर से हाथ उठा लेती है।)

कीर्ति—माँ ! अब ठीक हूँ। वे तो सामयिक चक्कर थे। बताओ, क्या बात है ?

सुभद्रा—कल मैंने बताया था न कि प्रभाकर करुणा से प्रेम करने लगा था, फिर उसको छोड़ सुमति के पीछे पड़ गया। सुमति की सगाई प्रभाकर के एक मित्र सुशील से हो गई। अब प्रभाकर देवकी से प्रेम करने लगा है। दोनों में बहुत कुछ निश्चय हो चुका है। अब सुशील कुमार एक भोज का प्रबन्ध कर रहा है। भैया चाहते हैं कि प्रभाकर और देवकी की सगाई पक्की हो जाये। पर मेरा मन कहता है कि यह सम्बन्ध भी नहीं बन सकता।

कीर्ति—कैसे कहती हो माँ ! वे और देवकी परस्पर पत्र-व्यवहार करते रहे हैं और वचन बद्ध हैं। देवकी ने स्वयं मुझको यह सब कुछ बताया है।

सुभद्रा—ओह ! तभी सिर में चक्कर आने लगे थे।

कीर्ति—माँ ! मैं विचार करती हूँ कि वे इतने अनिश्चित बुद्धि हैं तो मुझको अपने भाग्य पर सन्तोष कर लेना चाहिए। इस प्रकार के व्यक्ति के साथ बंध जाने से तो कुंवारी ही रहना ठीक नहीं क्या ?

सुभद्रा—नहीं कीर्ति ! वह मन विचलित केवल इस कारण है कि बीवी पसन्द करने का काम उसने अपने ऊपर लिया हुआ है। अन्य युवकों की भाँति वह भी इस कार्य की योग्यता नहीं रखता। जिस समय यह जिम्मेदारी उसने अपने से किसी बड़े आदमी पर डाली, उसका विवाह हो जाएगा और पश्चात् वह एक सफल पति सिद्ध होगा।

कीर्ति—यही तो कठिन बात है। वे यह जिम्मेदारी किसी अन्य पर डालेंगे भी या नहीं और यदि डालेंगे तो किस पर डालेंगे ? यदि कहीं मामा जी को उन्होंने अपना सरपरस्त बना लिया तो वे अपनी साली की लड़की की भलाई देखेंगे। हम देहातियों को कौन पूछता है !

सुभद्रा—पर तुम्हारे मामा इसमें क्यों हस्तक्षेप करेंगे ? मैं तो चाहती हूँ कि प्रभाकर की माँ से मिलूँ और उसको अपना अधिकार प्राप्त करने के लिये कहूँ।

देखो, मैंने प्रभाकर जी के घर का पता जान लिया है और मैं उसकी माँ से मिलने जा रही हूँ। सुशील का भोज दस तारीख को होने वाला है और आज छः तारीख है। अभी तीन-चार दिन बीच में हैं। इतने काल में बहुत कुछ हो सकता है।

अंक तीन

दृश्य प्रथम

प्रभाकर का कमरा। प्रभाकर लिख रहा है। उसकी माँ पिछले कमरे में बैठी जप कर रही है। वह अपना जप समाप्त कर प्रभाकर के पास आकर खड़ी हो जाती है।)

चंचल—प्रभाकर !

प्रभाकर—हाँ माँ !

चंचल—तुम गाँव कब चल रहे हो ?

प्रभाकर—अभी कुछ दिन ठहरो माँ ! देवकी का पत्र आया है कि वह अपने पिता को लेकर विवाह का निश्चय करने आ रही है।

चंचल—पर मैं कहती हूँ कि तुम्हारा विवाह कीर्ति से ही बधा है।

प्रभाकर—कैसे जानती हो माँ ! मैं देवकी को वचन दे चुका हूँ।

चंचल—पर तुम्हारा वचन तो कवियों का वचन है ! पहिले तुमने करुणा के भाई को दिया। फिर सुमति के पिता से बातचीत की। तदनन्तर तुम देवकी को वचन दे बैठे हो। मैं कहती हूँ कि तुम्हारा यह वचन भी पूरा नहीं होगा।

प्रभाकर—माँ ! तुम ज्योतिष कब से लगाने लगी हो ?

चंचल—यह ज्योतिष नहीं है प्रभाकर ! भगवान का वर है। मैं अभी पूजा कर रही थी कि वे मेरे कान में आकर कह गये हैं कि तुम्हारा विवाह कीर्ति से होगा और शीघ्र ही।

प्रभाकर—सच कहती हो माँ ?

चंचल—हाँ, हाँ, सच कहती हूँ। भगवान से हँसी ठट्ठा नहीं किया जाता

प्रभाकर—तो सुन लो माँ ! तुम्हारा भगवान इस बार झूठा सिद्ध होगा

शर्त लगालो। यदि मेरा विवाह देवकी से हो गया तो तुम भगवान की पूजा छोड़ दोगी।

चंचल—यह नहीं होगा। मुझको उस पर विश्वास है। इस पर भी मैं शर्त नहीं लगाती। इस कारण कि भगवान हम दुनियांदारों की शर्त का विषय नहीं बन सकता।

प्रभाकर—यह खूब है माँ! विश्वास है फिर भी शर्त नहीं लगातीं।

चंचल—तो कर लो विवाह, यदि होता है तो।

प्रभाकर—होगा माँ! विवाह के पश्चात् मैं गाँव चलूँगा और वहाँ जाकर कीर्ति का विवाह किसी देहाती, अच्छे से युवक से कर दूँगा। इस प्रकार तुम भी अपने वचन को पूरा कर सकोगी।

चंचल—तुम कीर्ति से विवाह नहीं करोगे तो मैं गाँव में जाकर मुख नहीं दिखाऊँगी।

प्रभाकर (चिन्ता प्रकट करते हुए)—तो कहाँ रहोगी?

चंचल—यहाँ तुम्हारे पास और तुम्हारी बहू की टहल सेवा करूँगी।

प्रभाकर—तब ठीक है। ऐसा करो, जब तुमने भी रहना है और मेरी पत्नी ने भी रहना है, तो एक बड़ा सा मकान देखलो।

चंचल—यह तो करना ही पड़ेगा। पर पहिले भगवान की इच्छा के विरुद्ध विवाह तो करो।

(इस समय बाहर से सुशील की आवाज़ आती है।)

सुशील—प्रभाकर दादा! घर में हो?

चंचल—आओ बेटा! भीतर आजाओ।

(सुशील भीतर प्रवेश करता है और चंचल के चरण स्पर्श करता है।)

चंचल—सुखी रहो बेटा!

सुशील—माता जी! आपको एक कष्ट देने आया हूँ।

चंचल—बताओ, क्या काम है?

सुशील—मेरे घर पर कुछ मेहमान भोजन करने आने वाले हैं। उनमें

कुछ स्त्रियाँ भी हैं। इस कारण उनका स्वागत करने के लिये माँ की आवश्यकता आ पड़ी है। सो आप यह काम संभाल लीजिये।

(प्रभाकर और चंचल दोनों हँसते हैं।)

चंचल—सुशील बेटा ! यह तो बहुत बढ़िया काम तुम दे रहे हो ? परन्तु मैं पूछती हूँ कि तुम लोग अपना विवाह कर अपनी पत्नियों को ले आओ तो माँ उधार माँगने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

सुशील—माता जी ! यह भी अब जल्दी ही कर रहा हूँ। मेहमानों में मेरी होने वाली पत्नी भी आ रही है। उससे विवाह के दिन का निश्चय भी तब ही होने वाला है।

चंचल—ओह ! समझी। कब है यह आयोजन ?

सुशील—दस तारीख को रात के आठ बजे भोज है। परन्तु आपको तो सायंकाल ही घर आजाना चाहिये और प्रभाकर जी को भी। मेरी होने वाली पत्नी और स्वसुर भी आएंगे और प्रभाकर बड़ा भाई बन कर उनसे बात करेगा।

(प्रभाकर घबरा कर ऐसे उठता है, जैसे बिच्छू ने काट खाया हो।)

प्रभाकर—नहीं सुशील ! मैं सुमति के सामने नहीं जा सकता।

सुशील—क्यों, तुमने कुछ खराबी की है क्या, जो तुम्हें लज्जा लग रही है ? लज्जित तो उसको होना चाहिये कि बिना तुमको बताये मुझसे सगाई के लिये तैयार हो गई है।

चंचल—क्या कह रहे हो सुशील ? क्या तुम्हारी पत्नी वही सुमति है, जिससे यह विवाह के स्वप्न देखता था ?

सुशील—हाँ, माँ जी !

चंचल—तब तो मैं अवश्य चलूँगी और उससे मिलूँगी। प्रभाकर को भी कान पकड़ साथ ले चलूँगी। (प्रभाकर को संबोधित कर) कैसे नहीं जाओगे ? नहीं जाना तो चूड़ियाँ पहिन घर बैठ जाओ।

प्रभाकर—माँ ! तुम कुछ समझती तो हो नहीं। मुझको डाँटने लगती

हो। मुझको सुमति से गिला है।

चंचल—तुमको तो करुणा से भी गिला है और मैं कहती हूँ कि देवकी से भी गिला होगा।

प्रभाकर—मुझको तो यह संदेह हो रहा है कि तुम देवकी के पिता से मिल, सुदर्शन की तरह उनको भी बहका आई हो और भगवान की महिमा गा रही हो।

चंचल—प्रभाकर! नहीं। मैं न तो देवकी को जानती हूँ और न ही उसके पिता को। मैं परमात्मा के नाम पर झूठ नहीं बोलती। मैंने जो कुछ कहा है, वह भगवान के अपने शब्द ही हैं।

सुशील—प्रभाकर दादा! छोटे भाई की लाज रखलो। मैं अपनी पत्नी और स्वसुर के सम्मुख कह चुका हूँ कि तुम मेरे परम मित्र हो। अब तुम नहीं आओगे तो बहुत ही लज्जा की बात होगी। साथ ही उस भोज में कुछ अन्य लड़कियाँ भी होंगी, जो तुम्हारी कविता पर मुग्ध हैं। वे तुम्हारे मुखारवृन्द से कुछ सुनना चाहेंगी।

प्रभाकर—सुशील भैया! तुम बहुत ही जबरदस्त आदमी हो। तुम्हारे सामने मैं हार चुका हूँ। जैसा कहते हो, वैसा ही होगा।

सुशील—तो ठीक है। दस तारीख को सायं चार बजे तुम माँ को लेकर आजाना। और देखो, कोई बहुत ही सुन्दर कृति कहने के लिए तैयार कर लाना।

दृश्य द्वितीय

(प्रभाकर का कमरा। चचंल अकेली बैठी है। प्रभाकर घर पर नहीं है। बाहर घंटी बजती है। चंचल द्वार पर आकर पूछती है।)

चंचल—कौन है?

बाहर से आवाज़—चंचल देवी हैं घर पर?

चंचल—तुम कौन हो ?

आवाज़—एक देवी जी श्री प्रभाकर जी की माता से मिलने आई हैं। बाहर सड़क पर मोटर में बैठी हैं। नाम सुभद्रा है।

चंचल—उनको भीतर ले आओ।

आवाज़—वे आपसे एकान्त में मिलना चाहती हैं।

चंचल—यहाँ मैं अकेली ही हूँ।

(कुछ ही क्षण पश्चात सुभद्रा कमरे में प्रवेश करती है। चंचल उठकर उससे गले मिलती है। पश्चात उसे बैठा कर पूछती है।)

चंचल—सुभद्रा बहिन ! तुम कैसे आई हो ?

सुभद्रा—जब तुम चली आईं तो कीर्ति दिन रात रोने लगी। जब मैंने उससे कारण पूछा तो बोली कि वह भी दिल्ली जाकर प्रभाकर से मिलना चाहती है। विवश हम दोनों यहाँ पहुँच गई हैं।

चंचल—कहाँ ठहरी हो ?

सुभद्रा—यही बताने के लिये तो आई हूँ। यह तो तुम जानती ही हो कि मेरे भाई दिल्ली में कारोबार करते हैं। हम उनके घर ही ठहरे हैं। मेरे भाई के एक मित्र हैं सुशील कुमार। उनके घर भाई को और हम सब को भोज का निमंत्रण मिला है। मैं कीर्ति को लेकर भोज पर जा रही हूँ। सुना है प्रभाकर भी उस भोज में सम्मिलित होगा। यदि तुम भी आ सको तो कीर्ति को उसको दिखा दिया जाए।

चंचल—यह तो बहुत अच्छा अवसर है। मैं अवश्य चलूँगी।

सुभद्रा—परन्तु एक बात है। एक लड़की देवकी है। वह मेरे भाई की साली की लड़की है। वह भी प्रभाकर से मिलने के लिए वहाँ ठहरी हुई है और सुना है कि उसकी प्रभाकर से पहिले ही मुलाकात है। उसका पिता विवाह की बात पक्की करने आया हुआ है। वे दोनों भी इस भोज में आ रहे हैं।

(चंचल आवाक मुख देखती रह जाती है। सुभद्रा आगे कहती है।)

सुभद्रा—इस पर मैंने एक योजना बनाई है और तुमको वह बताने आई हूँ। मुझको आशा है कि कीर्ति सौन्दर्य में देवकी से सवाई रहेगी। मैं समझती हूँ कि वह कीर्ति को पहिचान नहीं सकेगा और कीर्ति अपना नाम बदल कर वहाँ रहेगी। मैं यत्न करूंगी कि कीर्ति प्रभाकर के एक ओर बैठे और देवकी तो दूसरी ओर बैठेगी ही। शेष भगवान के हाथ में है। तुमने भी यह नहीं बताना कि यह कीर्ति है।

(चंचल पुनः विस्मय में सुभद्रा का मुख देखती है।)

सुभद्रा—क्या विचार कर रही हो बहिन ?

चंचल—मैं यह विचार कर रही हूँ कि भगवान का आशीर्वाद कीर्ति को मिल चुका है। मैं आज पूजा कर रही थी कि मुझे कुछ ऐसा भास हुआ कि प्रभाकर का विवाह कीर्ति से ही होगा।

तब से ही मैं विचार कर रही थी कि यह कैसे होगा। सो भगवान अपना वचन पूरा करने के लिए यह आयोजन कर रहा है। अभी अभी सुशील आया था और मुझको तथा प्रभाकर को निमंत्रण दे गया है। उसको पता नहीं कि वहाँ क्या नाटक होने वाला है। अब तुम आई हो और नाटक की भूमिका बाँध चली हो। इसके आगे भगवान स्वयं नाटक के मुख्य पात्रों से कार्य कराएगा। मैं स्वयं तो कीर्ति के विषय में चुप ही रहूँगी। पर उसका नाम क्या होगा ?

सुभद्रा—वही, जो बचपन में तुमने उसका रखा था—सुमी।

चंचल—ठीक है। मैं इस अवसर के लिए परमात्मा का धन्यवाद करूंगी। अच्छा बहिन, कुछ खाओ-पीओगी ?

सुभद्रा—नहीं, अब मैं जाती हूँ। कहीं प्रभाकर आगया तो सब रहस्य समय से पूर्व ही खुल जाएगा। वह मुझको पहिचान गया तो सतर्क हो जाएगा।

(दोनों स्त्रियाँ उठ कमरे से बाहर निकल आती हैं। सुभद्रा कार में बैठ कर चली जाती है।)

दृश्य तृतीय

(सुशील का मकान। एक बहुत बड़े कमरे में डाईनिंग टेबल पर बहुत से लोग बैठे हैं। कमलापति, विश्वम्भर भट्ट, राधाकृष्ण और सुशील एक साथ हैं। नन्दलाल और उसकी पत्नी उसके पश्चात् हैं। फिर मोहनी, चंचल और कृष्णा की दोनों छोटी बहनें हैं। पश्चात कृष्णा तथा देवकी हैं। देवकी के साथ प्रभाकर और फिर कीर्ति बैठी है। कीर्ति के आगे सुमति है। इस प्रकार भोजन चल रहा है। होटल के बैरे भांति-भांति के पकवान परस रहे हैं।

प्रभाकर अपने आस पास दोनों लड़कियों, कीर्ति और देवकी को बार बार देखता है। देवकी अपने बगल में बैठी कृष्णा से कहती है।)

देवकी--कृष्णा ! प्रभाकर जी तो आए नहीं। तुम तो कहती थीं कि वे भी आएंगे।

कृष्णा—मैं उन को पहिचानती नहीं। कहो तो सुशील जी से पता करू ?

देवकी—करो।

कृष्णा—पर वे कहते थे कि भोज के पश्चात सब ड्रायंग रूम में चलेंगे। वहाँ परस्पर परिचय होगा।

देवकी—तो चुप रहो। वहाँ चल कर ही पता करना। पर वह लड़की कौन है, जो कीर्ति के दूसरी ओर बैठी है।

कृष्णा—मैं उसको नहीं जानती।

(दोनों भोजन में व्यस्त हो जाती हैं। प्रभाकर एक बार पुनः देवकी की ओर देख कर अपने दूसरी ओर बैठी कीर्ति से पूछता है)

प्रभाकर—क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?

कीर्ति—सुग्गी।

प्रभाकर—विचित्र नाम है और आप हैं भी विचित्र। आप कमलापति जी की क्या लगती हैं?

कीर्ति—भानजी। मेरी माँ कमलापति जी की सगी बहिन हैं।

प्रभाकर—और यह मेरी बगल में बैठी करुणा देवी उनकी क्या लगती हैं?

कीर्ति—करुणा? (विस्मय में प्रभाकर का मुख देख) यह कमलापति जी की साली की लड़की है, परन्तु·····।

प्रभाकर (बात चीत में ही काट कर)—ये दिल्ली में क्या कर रही हैं?

कीर्ति (मुस्करा कर)—इनकी सगाई हो रही है।)

प्रभाकर—और आपकी सगाई हो चुकी है क्या?

(कीर्ति की आँखें लज्जा से झुक जाती हैं। उसका मुख लाल हो जाता है। कुछ काल तक दोनों चुप रहते हैं। पश्चात कीर्ति उसके मुख पर देखती है। उसकी आँखें सजल हैं।

प्रभाकर—क्या बात है? क्या मैंने कुछ अनुचित कह दिया है? मैं क्षमा चाहता हूँ।

कीर्ति—क्षमा की कोई बात नहीं। हमारे यहाँ कुँवारी लड़की से ऐसी बात नहीं पूछी जाती। इस प्रकार की बात उसके माता पिता से की जाती है।

प्रभाकर—सुग्गी देवी! क्षमा कीजिए। मैं दिल्ली का जीव हूँ और यहाँ पढ़ी-लिखी समाज में, जहाँ लड़के-लड़कियाँ अपने विवाह का स्वयं प्रबन्ध करती हैं, ऐसी बातें अनुचित नहीं समझी जातीं। इस पर भी मैं क्षमा चाहता हूँ। परन्तु आपके पिता कहाँ हैं?

कीर्ति—मैं अपनी माँ के साथ दिल्ली आई हुई हूँ। उनके पेट में आज पीड़ा हो रही थी, इस कारण भोज पर नहीं आ सकीं।

प्रभाकर—आई होतीं तो मैं उन से बात करता। मैं कमलापति जी की

कोठी पर आकर बात करूंगा।

कीर्ति—पर आपके माता पिता नहीं हैं क्या ?

प्रभाकर—माँ है। (चंचल की ओर संकेत कर) वे बैठी हैं।

कीर्ति—ऐसी बातें पुरुष स्त्रियों से कैसे कर सकते हैं ? या तो आप मेरे मामा से पूछगीछ करिए या अपनी माता जी को मेरी माता जी के पास भेजिए।

प्रभाकर (मुस्करा कर)—एक बात तो आपने स्वीकार कर ली है कि आपकी सगाई नहीं हुई।

कीर्ति—वाह ! यह कैसे पता चला ?

प्रभाकर—तो मैं कमलापति जी से अथवा मेरी माँ आपकी माँ से क्या बात करेंगी ?

कीर्ति—यही कि मेरी सगाई हुई है अथवा नहीं। हुई है तो कहाँ हुई है ?

प्रभाकर—तो आपकी सगाई हो चुकी है ?

कीर्ति—फिर वही बात। देखिए, अब हम सब आपकी कविता सुनने की अभिलाषा रखती हैं।

प्रभाकर—वह तो भोज के पश्चात् ही होगी। पर मजा तो तब है, जब कोई दूसरा भी सुनाने वाला हो।

कीर्ति—सुना है एक और हैं, जो कविता करती हैं। वे भी तैयार होकर आई हैं।

प्रभाकर—आपका अभिप्राय मेरे साथ बैठी लड़की से है।

(कीर्ति प्रभाकर को इस प्रकार देवकी के विषय में बातें करते देख विस्मय में उसका मुख देखने लगती है। प्रभाकर पुनः कहता है।)

प्रभाकर—इसकी कविता में रस नहीं होता।

कीर्ति—सुनिएगा तो पता चलेगा। मैं समझती हूँ कि ये बहुत यत्न से बनाकर लाई हैं।

(दोनों अपने अपने विचारों में लीन हो जाते हैं। दूसरी ओर

सुशील से नन्दलाल पूछता है।)

नन्दलाल—सुशील भैया! मैं कितनी ही देर से देख रहा हूँ कि प्रभाकर तथा करुणा देवी परस्पर बातचीत नहीं कर रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों को परस्पर गिला है।

सुशील—करुणा? कहाँ है वह?

नन्दलाल—वह जो प्रभाकर जी के बाईं ओर बैठी है। करुणा ही तो है।

सुशील—उसका नाम करुणा नहीं। ठहरो, मैं पूछता हूँ।

(सुशील कमलापति के पास आकर पूछता है।)

सुशील—पंडित जी! आपने अपनी साली की लड़की का क्या नाम बताया था?

कमलापति—देवकी। पर सुशील! मैं कितनी ही देर से देख रहा हूँ कि दोनों एक दूसरे से बात तक नहीं कर रहे। देवकी कृष्णा से बात कर रही है और प्रभाकर कीर्ति से। देवकी तो कहती थी कि दोनों एक दूसरे को जानते हैं।)

(सुशील नन्दलाल की ओर घूम कर कहता है।)

सुशील—नन्दु भैया! यह करुणा नहीं, देवकी है।

नन्दलाल—देवकी? सच?

सुशील—हाँ-हाँ; यह कमलापति जी की साली की लड़की है।

(नन्दलाल विस्मय में सुशील का मुख देखता रह जाता है। सुशील उसको मुख खोले अपनी ओर निहारते पाकर पूछता है।)

सुशील—क्या देख रहे हो नन्दु भैया?

नन्दलाल—एक भयंकर नाटक। देखो सुशील! मैं समझता था कि यह लड़की करुणा है। इसने अपना नाम ऐसा ही बताया था। प्रभाकर भी यही जानता है। और जो करुणा है, उसको हम देवकी के नाम से जानते हैं। करुणा इससे अधिक सुन्दर है। अतः

करुणा को देवकी के नाम से प्रेम किया जा रहा है। गज़ब हो रहा है सुशील भैया !

(नन्दलाल कुछ विचार कर कुर्सी से उठ खड़ा होता है। फिर बैठ जाता है और कहता है।)

नन्दलाल—सुशील ! एक और विडम्बना उत्पन्न हो गई है। यह लड़की, जिसको तुम देवकी कहते हो और जिसको हम करुणा समझे हुए थे, मुझको प्रभाकर मान मेरे साथ प्रेम करती है। मैंने इसके सामने प्रभाकर बन नाटक किया था।

सुशील—यह तो तुमने गज़ब कर दिया। अब क्या होगा ? देखो न, वह तुम्हारी ओर मुस्करा कर देख रही है।

नन्दलाल—सुशील ! मेरा यहां रहना ठीक नहीं। मैं चलता हूँ। मेरे पेट में असह्य पीड़ा होने लगी है। मैं चलता हूँ। क्षमा करना, मैं तुम्हारे भोजन के साथ न्याय नहीं कर रहा। (अपनी बगल में बैठी पत्नी से) देखो देवी ! तुम चंचल मौसी के साथ आजाना। मैं जा रहा हूँ। मुझसे कारण मत पूछो। घर आओगी तो बताऊंगा।

(नन्दलाल बिना अपनी पत्नी को कुछ कहने का अवसर दिए उठ पड़ता है और चला जाता है। नन्दलाल की पत्नी सुशील से पूछती है।)

पुष्पा—भैया ! क्या हुआ है ?

सुशील—भाभी ! बहुत बड़ी भूल हो गई है नन्दु भैया से। उसकी भूल का एक भयंकर परिणाम निकलने वाला है और वह डर कर भाग गया है।

(नन्दलाल की पत्नी अनिश्चित मन खाना छोड़ बैठ जाती है। दूसरी ओर देवकी नन्दलाल को उठकर बाहर जाते देख कृष्णा से कहती है।)

देवकी—कृष्णा ! वह देखो प्रभाकर जी हैं। बहुत अच्छी कविता करते हैं। पर वे जा कहाँ रहे हैं ?

कृष्णा—पर देवकी बहिन ! माँ तो कह रही थीं कि वह बग़ल में बैठी स्त्री उनकी पत्नी है।

देवकी—पत्नी ? नहीं, यह नहीं हो सकता।

(देवकी अपने स्थान से उठ नन्दलाल वाली कुर्सी पर आकर बैठ जाती है और उसकी पत्नी से पूछती है।)

देवकी—क्षमा करें देवी जी ! ये जो यहाँ से उठकर गए हैं, आपके क्या हैं ?

पुष्पा—मेरे पति हैं ! क्यों ? क्या बात है ?

देवकी—बड़े बेईमान हैं।

पुष्पा (क्रोधित होकर)—सो तो मैं जानती हूँ। इसीलिए तो उनको घर से बाहर जाने को मना करती रहती हूँ। क्या किया है इन्होंने ?

(देवकी चुप कर रहती है और उठकर कमरे से बाहर निकल जाती है। सब लोग उसको देखते रह जाते हैं। भोज समाप्त होता है और सब लोग ड्रायंग रूम में चले जाते हैं। कमलापति देवकी के चले जाने से कुछ न समझ सुशील से पूछता है।)

कमलापति—सुशील ! क्या बात हुई है ? कुछ भारी गड़बड़ घुटाला-सा प्रतीत होता है।

सुशील—पंडित जी ! देवकी की सगाई प्रभाकर से होती प्रतीत नहीं होती। कहीं बहुत भारी भूल हो गई है। देवकी के लिए प्रभाकर उसका मित्र नन्दलाल था और प्रभाकर की दृष्टि में यह देवकी करुणा बनी हुई है।

दृश्य चतुर्थ

(ड्रायंग रूम। सब मेहमान सोफों पर और कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। राधाकृष्ण देवकी को वहां न देख ड्रायंग रूम से चला जाता है। नन्दलाल की पत्नी चंचल के पास आ बैठती है। इस समय प्रभाकर माँ के पास आकर कहता है।)

प्रभाकर—माँ! यदि तुम एक बात मेरी मानो तो मैं एक बात तुम्हारी मान जाऊंगा।

चंचल—क्या बात तुम्हारी मानूँ, जो तुम मेरी बात मानोगे?

(प्रभाकर माँ के समीप कुर्सी खिसका कर बैठ जाता है और धीरे से कहता है।)

प्रभाकर—वह देखो माँ! एक लड़की कमलापति जी और उनकी लड़की कृष्णा के बीच कुर्सी पर बैठी है।

चंचल—देख रही हूँ उसको। क्या है उसे?

प्रभाकर—माँ! वह बहुत सुन्दर है। सभ्य और सुशील भी है। यदि तुम उसकी माँ से मिलकर, उससे मेरे विवाह की बातचीत करो तो मैं·····।

चंचल—तो तुम क्या? कहो न, क्या करोगे?

प्रभाकर—तो मैं देवकी का विचार छोड़ दूँगा, जैसे करुणा का छोड़ा है।

चंचल (प्रभाकर की आँखों में देखकर)—और कीर्ति का क्या होगा?

प्रभाकर—पर माँ! तुम मेरा एक ही विवाह करोगी न। कानून से भी दो विवाह नहीं हो सकते।

चंचल—पर तुमने मेरी कौन सी बात मानी है?

प्रभाकर—यही कि एक धनी बाप की बेटी से विवाह नहीं करूँगा।

चंचल—प्रभाकर! तुम तितलियों के पीछे भागते फिरते हो। यह ठीक

नहीं। मेरा कहा मानो। कीर्ति से विवाह स्वीकार करलो। इसमें सब का कल्याण है।

प्रभाकर—माँ! मेरी भी कुछ मानो न। तुम उस लड़की से मिल लो और मिल कर स्वयं देखलो कि इस बार मेरी पसन्द गलत नहीं है।

चंचल—मैं उससे मिलूँगी और मिलने के पश्चात् ही बता सकूँगी कि मैं क्या करूँगी। अभी मैं कोई वचन नहीं देती।

प्रभाकर—माँ! तुम बड़ी अच्छी हो। मैं जीवन भर तुम्हारा एहसान मानूँगा।

पुष्पा—पर कवि महोदय! वह जो तुम्हारे दूसरी ओर बैठी थी और तुम्हारे भैया को बेईमान कहती थी, क्या किया है तुम्हारे भैया ने उसके साथ?

प्रभाकर—मैं क्या जानूँ भाभी! तुम भैया की अर्द्धांगिनी हो। जब तुम नहीं जानतीं तो मैं कैसे जान सकता हूँ?

पुष्पा—तुम दोनों पूरे गधे हो। ज़रूर तुमने उस बेचारी से दगा किया है। जब तुम्हारे पास बैठी थी, तो तुमसे लाल पीली हो रही थी।

प्रभाकर—तो भाभी! उससे हम दोनों की ओर से क्षमा माँग लो। तुम्हारे कहने से तो अवश्य क्षमा कर देगी।

(चंचल उठ कर कीर्ति के पास चली जाती है। इस समय कृष्णा उठकर सबको संबोधन कर कहती है।)

कृष्णा—हम सब प्रभाकर जी की सर्वोत्तम कविता सुनने के लिये व्याकुल हो रहे हैं। मैं सब की ओर से कवि महोदय से प्रार्थना करती हूँ कि वे अपने मुखारविन्द से पुष्प वर्षा करें।

प्रभाकर—कृष्णा देवी! मैं अकेला ही कवि इस समारोह में नहीं हूँ। एक मुझसे भी श्रेष्ठ कवयित्री आपकी बगल में बैठी हैं। यदि वह कुछ आरम्भ करें, तो मैं भी कहने को तैयार हो जाऊँगा।

कृष्णा—तो कुछ काल के लिये यहाँ पर कवि दरबार खुल जाये। परन्तु

वे तो चली गई हैं। उनको कुछ गलत फहमी हो गई थी।

(सुशील समझता है कि सब आयोजन विफल होने जा रहा है, इस कारण प्रभाकर से कहता है।)

सुशील—प्रभाकर दादा ! तुम ही कुछ कह दो न।

प्रभाकर—मैं सुमति देवी से निवेदन कर रहा हूँ।

सब लोग—हाँ, हाँ; अवश्य हो जाये।

(सुशील यह विचार कर कि सुमति उसके सम्मुख संकोच अनुभव कर सकती है, ड्रायंग रूम से बाहर चला जाता है।)

सुमति—मैं इस बात के लिए बिल्कुल तैयार होकर नहीं आई थी। परन्तु पिता जी कह रहे हैं कि मैं अवश्य कुछ सुनाऊँ। उनके आदेश को टाल नहीं सकती। इस कारण सुनिए—

जुग जुग ज्योति जले, भारत माता की जुग जुग ज्योति जले।
उज्ज्वल निर्मल कीर्ति अमर हो सकल जगत में सदा अजर हो।
परम्परा सी चले। जुग जुग.....॥
शीतल स्वच्छ मधुर गंगा सी इन्द्र धनुष सम बहु रंगा सी
अब संस्कृति सुफले। जुग जुग.....।
कोटि कोटि इसके नर नारी हों सुख प्रेम स्वतंत्रता धारी
हों विचार उजले। जुग जुग.....।
वीर धीर त्यागी नर नारी परम्परा इनकी हो जारी
सन्तन कथन फले। जुग जुग.....॥
महापुरुष इसमें उत्पन्न हों जन गण सेवा के शैदा हों
तब सुख सदा चले। जुग जुग.....॥
हों दुष्ट दमन साधु परित्राण हों बाल वृद्ध नारी सप्राण
हों सब काम भले। जुग जुग.....॥

कृष्णा—तो सुमति भाभी भी कविता करती हैं। भाभी ! एक और।

प्रभाकर—नहीं कृष्णा। अब मुझको कहने दो।

जब मन में प्यार बना उससे
तब भाग्य विधाता रूठ पड़ा
होंठों पर प्याला पहुँचा जब
तब वज्र गिरा वह टूट पड़ा।
जब मन में·····।
किस्मत के खेल खिलौनों से
मैं भटक रहा हूँ सागर में
काल तरंगों के धक्कों से
साहस है मेरा टूट पड़ा।
जब मन में·····।
पर छोटे से जीवन में अब
खिलवाड़ न होने दूँगा मैं
सुख लूँगा लम्बे घूँटों से
लो भाग्य से झगड़ा फूट पड़ा॥
जब मन में·····।
अगणित पुष्पों को मिट्टी में
मिलते देखा है इस जग में
इस लिए वसन्त निकलते ही
मैं कुसुम दलों पर टूट पड़ा॥
जब मन में·····।
भर दे मधु बाला वह प्याला
जीवन रस से तू बार बार
पी लूँ मैं भी भर पेट इसे
जब तक मैं भी हूँ ठौंठ खड़ा॥
जब मन में·····।

दृश्य पंचम्

(प्रभाकर का मकान। उसके पढ़ने का कमरा। चंचल, सुशील प्रभाकर और नन्दलाल बैठे बातें कर रहे हैं।)

नन्दलाल—सुशील! यह तुमने क्या किया? बिना हमको बताए कि भोज पर कौन-कौन आने वाले हैं, मुझको और दादा को पकड़कर ले गए। यदि मालूम होता कि देवकी भी वहाँ होगी तो मैं·····।

सुशील—हाँ, बताओ न क्या करते? तुम जानते थे कि करुणा देवकी है और देवकी करुणा?

प्रभाकर—नन्दु भैया! छोड़ो इस बात को। सुशील को तो सुमति मिल गई। इससे उसका भोज अकारथ नहीं गया। परन्तु मेरी सिफारिश माँ से लगा दो न।

(सुशील हँसता है।)

सुशील (हँस कर)—दादा! अब माँ की बात मान जाओ। तुम सदैव गलत वस्तु पसन्द करते हो। एक बार माँ का विश्वास कर मान जाओ।

प्रभाकर—पर सामने पड़ी खीर को छोड़, कड़ुवा करेला खाने देहात में जाऊँ?

चंचल—देखो प्रभाकर! कीर्ति कड़ुवा करेला नहीं है। फिर यह सुग्गी की माँ नहीं मानती तो मैं क्या करूँ? वह कहती है कि मेरे पुत्र का चित्त स्थिर नहीं। हर तीसरे दिन वह अपनी पसन्द बदलता है। ऐसे चंचल मन वाले के हाथ में वह अपनी पुष्प समान कोमल लड़की को नहीं दे सकती।

प्रभाकर—मैं कान को हाथ लगाकर कहता हूँ कि अब ऐसा नहीं करूँगा। एक बार तुम फिर उससे मिलकर कहो।

चंचल—इस पर तुमने जो गाना उस दिन गाया था, वह बड़ा

ही खराब था। सुग्गी स्वयं भी यह कह रही थी कि यदि यह बात कविता में न होती, तो ऐसे आदमी को किसी सभ्य समाज में बैठने न दिया जाता।

प्रभाकर—ओह ! पर मैंने तो कुछ खराब बात नहीं कही थी।

चंचल—तुमने कहा था न—

अगणित पुष्पों को मिट्टी में
मिलते देखा है इस जग में
इस लिए वसन्त निकलते ही
मैं कुसुम दलों पर टूट पड़ा।

देखो, सुग्गी कहती थी कि यह पद तो ऐसे होना चाहिए था—

अगणित पुष्पों को मिट्टी में
मिलते देखा है इस जग में
सावधान इस लिए कुसम हे
डाली पर रहे अटूट खड़ा।

प्रभाकर (आश्चर्य चकित हो)—तो वह कविता भी करती है ? माँ ! एक बार फिर उसके पास जाओ न।

सुशील—माँ जी ! अब तो आपने सुग्गी को भी देखा है और कीर्ति को भी। भगवान की सौगन्ध खाकर बताइए कि दोनों में से अधिक कौन पसन्द है आपको ?

चंचल—सुशील बेटा ! बहुत बड़ी सौगन्ध दे डाली है ?

सुशील—हाँ माँ ! इसका दादा के जीवन पर्यन्त तक सम्बन्ध है। इसको पक्षपात रहित होकर बताओ।

चंचल—तो तुम लोग यह समझते हो कि तुमको प्रभाकर का मुझसे अधिक हित है। देखो सुशील ! प्रभाकर मेरा एक ही बेटा है। क्या तुम मुझको मुर्ख समझते हो कि मैं किसी प्रकार जान बूझ कर

उसको घटिया बीवी लाकर दूँगी। मैं सत्य हृदय से समझती हूँ कि प्रभाकर का इसी में हित है।

(चंचल की आँखें यह कहते कहते तरल हो जाती हैं। प्रभाकर उन को देखता है और खड़ा होकर कमरे में टहलने लग जाता है। कमरे के दो तीन चक्कर लगाकर, बैठ माँ के चरण स्पर्श कर कहता है।)

प्रभाकर—माँ! तो जो मन में आये करो। अब तुम्हारी बात की अवहेलना नहीं करूँगा। पिछली भूलों के लिये क्षमा कर दो।

चंचल—देखो प्रभाकर! मेरा कहा मान लो। मैं विश्वास दिलाती हूँ कि तुमको मेरा कहा मानने पर पश्चात्ताप नहीं लगेगा।

प्रभाकर—अब जो करना हो कर दो। मैं अपने मित्रों को साक्षि बनाकर कहता हूँ कि अब तुम्हारी बात नहीं टालूँगा।

(चंचल की आँखों में से आँसू बहने लगते हैं।)

चचल—प्रभाकर बेटा! चिरंजीव रहो। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान तुम्हारी मनोकामना पूरी करेगा। देखो, मेरा कहा मानो। कीर्ति की माँ कीर्ति को लेकर दिल्ली में आई हुई है। उसका पिता भी आने वाला है। सगाई का शकुन शीघ्र हो जायेगा और फिर एक दो दिन में विवाह हो जाएगा। देखो, अब न नहीं करना।

सुशील—नहीं माँ जी! अब यह न नहीं करेगा। प्रभाकर कह कर पीछे नहीं हटता। यदि अब यह हटेगा तो मैं इसके द्वार पर भूख हड़ताल कर दूँगा।

(इस समय बाहर से घंटी बजती है। सुशील उठकर देखने जाता है और कमलापति तथा कीर्ति के माता-पिता के साथ भीतर आता है। साथ में एक नौकर है, जिसके हाथ में एक मिठाई का थाल, लाल रेशमी रूमाल से ढका हुआ है।

कीर्ति की माँ—चंचल बहिन! प्रभाकर तो अच्छा खासा जवान हो हो गया है। बहुत ही नटखट हो गया प्रतीत होता है। मुझको तो

वह दिन स्मरण आ रहे हैं जब वह नंग धड़ंग आंगन में घुस आया करता था।

कीर्ति का पिता—देखो बेटा ! बैठ जाओ। जिससे कीर्ति की माँ शकुन करले।

प्रभाकर (अपनी माँ की ओर देख कर)—माँ ! तुम बड़ी षड्यंत्रकारिनी हो। इधर मेरे मुख से हाँ निकली और उधर से ये लोग आ पहुँचे। इनको बाहर मेरी बात सुनने के लिए खड़ा कर रखा था क्या ! (सुशील और नन्दलाल हंस पड़ते हैं।)

प्रभाकर—तो तुम लोग भी षड्यंत्र में सम्मिलित थे ? अब मैं अपनी बात से बदल जाऊं तो क्या मुख दिखाओगे अपना ?

सुशील—दादा ! नन्दु भैया का विवाह हो चुका है। मेरा शीघ्र ही हो रहा है। इस कारण हम दोनों को तुम पर दया आ रही थी। अतः माँ से हम राय मिला बैठे। कीर्ति को देखोगे तो तुम्हारा सब गिला दूर हो जाएगा।

प्रभाकर—तो तुमने उस को देखा है ?

सुशील—माँ जी ने जो देखा है और हमको उन पर पूर्ण विश्वास है।

कमलापति—प्रभाकर ! बैठो। बहुत देख भाल हो चुकी। मनन हो चुका और बातचीत भी हो चुकी। अब कल्पना के घोड़े समेटो और व्यवहारिक बुद्धि का प्रयोग करो। अपनी माँ पर विश्वास रखो। सदैव कल्याण होगा।

प्रभाकर चुपचाप बैठ जाता है। कीर्ति का पिता थाल पर से कपड़ा उठा, पिसे केसर में अंगूँठा भिगो कर प्रभाकर को तिलक लगाता है। पश्चात् चावल के दाने उस केसर पर लगा देता है। इस पर कमलापति, सुशील, नन्दलाल और सुभद्रा चंचल को बधाई देने लगते हैं।

कमलापति—लो बहिन चंचल ! यह काम तो हो गया। अब मेरा

प्रस्ताव यह है कि अगले सप्ताह रविवार को मेरी कोठी पर देवकी का विवाह हो रहा है। मेरा कहना है कि कीर्ति का विवाह भी तब ही और वहाँ ही हो जाए। क्यों प्रभाकर। है स्वीकार?

प्रभाकर—अब तो सब कुछ माँ के अधीन है। वे कहेंगी तो फांसी भी चढ़ जाऊंगा। जब बलि ही चढ़ना है, तो दो दिन पहिले क्या और पीछे क्या? देवी जी के चरणों पर चढ़ने के लिए बकरा तैयार है।

सुशील—चाचा जी! मेरी सम्मति यह है कि विवाह के पूर्व हमारे मित्र को हमारी भाभी के दर्शन करा दिए जाएं।

(कमलापति गंभीर हो कहता है।)

कमलापति—यह बात मानने योग्य है। प्रभाकर! कल सायंकाल हमारी कोठी में देवकी के होने वाले पति को चाय पार्टी दी जा रही है। यदि चंचल बहिन और प्रभाकर निमंत्रण स्वीकार करें, तो मैं कीर्ति और उसके माता पिता को भी वहाँ आमंत्रित कर लूँगा।

नन्दलाल—स्वीकार है।

(सब हंसने लगते हैं। कमलापति कहता है।)

कमलापति—निमंत्रण प्रभाकर जी को है और स्वीकार नन्दलाल जी कर रहे हैं।

चंचल—ये त्रिमूर्त्ति हैं। इनमें से अकेला कोई नहीं आएगा और मैं भी तो बिना नन्दलाल की पत्नी को बहू दिखाए कैसे रह सकती हूँ।)

कमलापति—ओह! यह तो मैं भूल ही गया था। अच्छा, आप सबको निमंत्रण है।

(सब का हंसते हुए प्रस्थान।)

दृश्य षष्ठ

(कमलापति जी की कोठी। बाहर लान में चाय के लिए तिपाइयां लगी हैं। प्रभाकर और चंचल वहाँ पहुँचते है। सुशील और उसके साथ अन्य व्यक्ति वहाँ पहिले ही बैठे हुए हैं। कमलापति और मोहनी चाय का प्रबन्ध कर रहे हैं। प्रभाकर और चंचल को आया देख मोहनी आगे बढ़कर उनका स्वागत करती है। इस समय सुभद्रा और कीर्ति का पिता कोठी में से निकल प्रभाकर से मिलने बाहर आ जाते हैं। सुशील उठकर प्रभाकर से अपने साथ बैठे सज्जन का परिचय कराता है।)

सुशील—प्रभाकर दादा ! ये हैं निर्मल चन्द्र। कमलापति जी के छापेखाने के मैनेजर हैं। इनकी सगाई देवकी से हो गई है और विवाह आगामी रविवार को होगा।

और निर्मल चन्द्र जी ! ये हैं श्री प्रभाकर, जिनकी पुस्तकें आपके प्रेस में छपती हैं। इनकी सगाई कीर्ति देवी से हो गई है और इनका विवाह भी रविवार को ही होगा।

(इस समय नन्दलाल अपनी पत्नी को लेकर वहाँ आ पहुँचता है।)

सुशील—वह नन्दु भैया भी आ गए। नन्दु भैया ! इधर आओ।

(प्रभाकर, सुशील, निर्मल और नन्दलाल एक तिपाई पर बैठ जाते हैं। चंचल नन्दलाल की पत्नी को साथ ले कोठी के भीतर चली जाती है। चाय का समान परसा जा रहा है।)

कमलापति सुभद्रा और कीर्ति का पिता एक अन्य मेज पर बैठ जाते हैं। इस समय चंचल और नन्दलाल की पत्नी, कीर्ति और देवकी को लेकर कोठी से निकलती हैं। साथ ही कमलापति की तीनों लड़कियाँ भी हैं। प्रभाकर देवकी और कीर्ति को देखता है। दोनों शृंगार किए हुए हैं और वस्त्र भूषण पहिने हुए हैं।

प्रभाकर कीर्ति को मुग्गी के रूप में पहिचान आश्चर्य चकित रह जाता है। जब दोनों उनकी ओर आती हैं, तो वह उनको देख विस्मय में खड़ा हो जाता है।

देवकी हाथ जोड़ अपने पति निर्मल चन्द्र को नमस्कार करती है और पीछे, प्रभाकर सहित सबको नमस्कार करती है। कीर्ति झुककर प्रभाकर के चरण स्पर्श करती है। प्रभाकर दो पग पीछे हट जाता है और पूछता है।

प्रभाकर—माँ ! यह क्या मज़ाक है····· ?

(सुशील, नन्दलाल तथा अन्य सब खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।)

चंचल—प्रभाकर ! यह तुम्हारी पत्नी कीर्ति है। अब मन भर कर देख लो। पीछे न कहना कि बिना दिखाए विवाह दी है।

प्रभाकर—यह कीर्ति है माँ ?

(प्रभाकर आँखें फाड़ फाड़ कर देखता है।)

चंचल—हाँ बेटा ! वही, जो अपने पिता के कच्चे मकान के बाहर धूरि में लथपथ कंकड़ों से खेला करती थी।

प्रभाकर (कीर्ति की ओर देखकर)—पर तुमने कहा था कि तुम्हारा नाम मुग्गी है।

कीर्ति—तो भूल गए हैं आप ? आपने ही तो मेरा नाम बचपन में मुग्गी रखा था। मैं वही तो हूँ।

(प्रभाकर लज्जित होकर बैठ जाता है।)

कमलापति—इसमें प्रभाकर जी का दोष नहीं। वास्तव में सच्चे अर्थ में कवि वह हो सकता है, जो संसार को भूल जाए। हमारा तो यह कहना है कि कवि हो चाहे लेखक। उसको अपना एक सूत्र संसार से बाँध रखना चाहिए। यदि यह सूत्र टूट गया तो कवि और लेखक अव्यवहारिक, मिथ्या-पथ का दर्शक तथा अन्धकार का सूचक हो जाएगा।